कुरुक्षेत्र

नवम्बर, 1987 मूल्य 2 रुपये

ग्रामीण कामकाजी महिलायें

महिलाओं के स्तर में सतत् सुधार लाकर, उन्हें राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा में लाने के लिए हम कृत संकल्प हैं। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत इस उद्देश्य के लिए सामान्य व विशेष कई योजनाएं आरम्भ की गई हैं। उनमें से एक है ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और शिशु विकास।

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए।

●

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

●

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिये।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

दूरभाष : 384888

एक प्रति : 2.00 रु.

वार्षिक चन्दा : 20 रु.

सहायक सम्पादक : गुरचरण लाल लूथरा
उप सम्पादक : राकेश शर्मा

सहायक निदेशक (उत्पादन) : राम स्वरूप मुंजाल

आवरण पृष्ठ : जीवन अडलजा

चित्र : फोटो प्रभाग एवं ग्रामीण विकास विभाग से साभार

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास का प्रमुख मासिक

वर्ष 33 **कार्तिक-अग्रहायण 1909** **अंक-1**

इस अंक में **पृष्ठ संख्या**

टैक्नोलॉजी के चयन का महिलाओं पर प्रभाव
ए.के. राजुलादेवी 2

उत्तर प्रदेश में सूखा राहत कार्यक्रमों की स्थिति
सीताराम खोड़ावाल 6

लड़कियों को पढ़ाइये
डा.विनोद गुप्ता 10

सूखे से राहत (कविता)
मोहन चन्द्र मंटन 11

दूसरी नगरी
प्रेमशीला गुप्ता 12

भूमि सुधार उपायों द्वारा ग्रामीण उत्थान
निर्मल गांगुली 14

कृषि और ग्राम विकास के अन्य सहायक काम-धंधों में महिलाओं की भूमिका 18
रामनाथ यादव तथा एम.पी.आजाद

हिमालय की रङ नारी 20
'हयात' फकसियाल

भारत में भूमि सुधार
निर्मल दास माहेश्वरी 22

राहत के लिए उठाए गए हैं आवश्यक कदम
हरि विश्नोई 26

कृषि विकास के लिए महिला श्रमिकों को प्रशिक्षण
डा.(श्रीमती) ए.लक्ष्मी देवी 29

विकसित गांव
संतोष नारंग 31

एकीकृत ग्रामीण विकास : अवधारणा अभिप्राय एवं उद्देश्य
प्रो.आर.आर.यादव एवं महेन्द्र राम 32

वनाधारित उद्योगों के विकास की संभावनाएं
प्रो.एस.सी.जैन 35

बिहार के वन और उनकी समस्याएं
अंकुश्री 38

टैक्नोलॉजी के चयन का महिलाओं पर प्रभाव

ए.के. राजुलादेवी

नयी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण, मानव उत्पादकता और कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रमों को लागू करने में महिलाओं की विशेष कुशल भूमिका है। वर्तमान सत्ता के ढांचे में उनकी भविष्य-निर्माण क्षमता को बहुत ही मध्यम स्वर में स्वीकार किया जाता है। आने वाले दस वर्षों में कम से कम महिलाओं को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह तो आभास करना ही होगा कि वे भविष्य निर्माण में कैसे और कितना योगदान कर सकती हैं।

महिलाओं की स्थिति सम्बन्धी 1985 की विश्व रिपोर्ट में बताया गया है कि महिलाएं दुनिया भर में संपूर्ण घरेलू कार्य करने के अतिरिक्त घर के बाहर जो कार्य करती हैं उसे मिलाकर वे एक दिन में दो दिन के बराबर काम करती हैं। विश्व के कुल खाद्यान्न उत्पादन का आधा भाग महिलाएं पैदा करती हैं लेकिन उनके पास भूमि नहीं है। उन्हें ऋण प्राप्त करने में कठिनाई है और कृषि सलाहकारों द्वारा परियोजनाओं में उनकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता। विश्व में मजदूरी करने वाले कुछ लोगों में एक तिहाई महिलाएं शामिल हैं। लेकिन उन्हें ऐसे कार्यों में लगाया जाता है जिनके लिए कम से कम मजदूरी दी जाती है। पुरुषों के मुकाबले उन्हें ज्यादा बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। यद्यपि ऐसे कुछ संकेत हैं कि मजदूरी में असमानता कम हो रही है लेकिन पुरुष जो कार्य करते हैं उसके लिए महिलाओं को तीन-चौथाई से भी कम मजदूरी मिल पाती है। सभी उपलब्ध स्वास्थ्य सेवाएं जितने लोगों के स्वास्थ्य की देखभाल करती हैं उससे कहीं अधिक देखभाल महिलाएं करती हैं। बीमारियों की रोकथाम और स्वास्थ्य सुधार कार्यक्रमों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं की ओर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। महिलाओं द्वारा उत्पन्न की जाने वाली संतानों की औसत संख्या छह से घटकर चार हो गई है। पुरुषों के मुकाबले अब भी महिलाएं कम साक्षर हैं, तीन पुरुष साक्षर हैं तो केवल दो महिलाएं ही साक्षर हैं। स्कूलों में दाखिले से लड़कों और लड़कियों की संख्या का अंतर कम हो रहा है। 90% देशों में महिलाओं की उन्नति के लिए संस्थाएं कार्य कर रही हैं। लेकिन कम शिक्षा आत्म-विश्वास की कमी और काम के अधिक बोझ के कारण अभी तक अपने देशों के निर्णय-मंडलों में महिलाओं को अत्यल्प प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

अध्ययन के परिणामों से महिलाओं की असमान स्थिति का और अधिक पता चलता है। पत्नी और मां के रूप में महिलाएं जो कार्य करती हैं और जिनमें उनका आधा दिन खप जाता है उसके लिए उन्हें कोई पैसा नहीं मिलता और न ही उसका जिक्र किया जाता है। जिस काम के लिए कुछ नहीं दिया जाता वही कार्य सभी जगह महिलाओं का ही कार्य माना जाता है, उनकी जिम्मेदारी समझी जाती है। खाना पकाना, बच्चों की देखभाल, कपड़े धोना एवं उनकी मरम्मत करना, पानी लाना और जलाने की लकड़ी की व्यवस्था तो उन्हें ही करनी होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार यदि महिलाओं द्वारा किये जाने वाले कार्य का मूल्य आंका जाये तो अनेक देशों के कुल राष्ट्रीय उत्पाद का आधा बैठता है। विकासशील विश्व में कुछ काम पुरुषों का और कुछ काम महिलाओं का बताया जाता है। चूंकि महिलाओं को घर के अलावा बाहर भी काम करना पड़ता है और पुरुष विरले ही घर के भीतर काम करने की सोचते हैं, महिलाओं का काम स्वाभाविक रूप से बढ़ जाता है।

लेकिन सबसे बड़े अन्याय की बात यह है कि महिलाएं बाहर जो काम करें उससे ज्यादा घर के वे तमाम काम करें जो केवल उन्हें ही करने हैं यह तिगुना अन्याय है। इसका मतलब यह है कि महिलाएं पुरुषों के मुकाबले दुगने समय काम करती हैं। यह इसलिए और अन्यायपूर्ण है कि उन्हें इसके लिए कुछ पारिश्रमिक नहीं मिलता। फिर असम्मान की यह बात और भी अखरने वाली है कि घर में किये जाने वाले काम को काम ही नहीं समझा जाये। कारण इसके लिए खर्च जो नहीं करना पड़ता।

भारत की 1981 की जनगणना के अनुसार महिलाओं की कुल जनसंख्या का 87% गांवों में खेतों पर मजदूरी करता है। इसके मुकाबले खेतिहर मजदूरों में पुरुषों की संख्या केवल 46% है। यहां भी चिन्ता की बात यह है कि महिलाएं खेती का काम करने वाली न होकर खेतों पर मजदूरी करने वाली बनकर रह गई हैं। 1951 में खेतिहर मजदूर महिलाओं की संख्या एक तिहाई थी जो 1971 में बढ़कर पचास फ़ीसदी हो गई। इससे पता चलता है कि स्वतंत्र कृषि कार्य के स्थान पर कृषि मजदूरी की और अधिकाधिक महिलाओं का प्रवर्तन हो रहा है।

भारत में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए बनाये गये कानून के बावजूद आर्थिक क्षेत्र में उन्हें पुरुषों की भांति समानता दिलाने का कार्य आगे नहीं बढ़ा है। अपनी भूमि रखने वाले परिवारों में हरित क्रांति से पहले महिलाओं ने कृषि कार्य करना छोड़ दिया था। पंजाब भारत का सबसे सम्पन्न प्रदेश है और वहां खेतों में मजदूरी पर काम करने वाली महिलाएं सबसे कम हैं। आज के युग में ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन-निर्वाह की समस्या सबसे प्रमुख है। जिसके कारण कार्य करना आवश्यक हो जाता है। कृषि उत्पादन हेतु महिलाओं को अधिक संख्या में इसलिए काम करना पड़ा क्योंकि खेतों का आकार छोटा होता गया और गांव गरीबी की जकड़ में आ गए।

मजदूरी में असमानता

काम के एवज में दिये जाने वाले भुगतान में बड़ा अंतर है जिससे आमदनी भी असमान है। जुलाई 1980 में कोपेन हेगन सम्मेलन में महिलाओं को पुरुषों के बराबर भुगतान करने की जो बात कही गई थी, वह अभी दूर की बात है। भारत के गांवों में महिलाओं को पुरुषों को दी जाने वाली मजदूरी की तुलना में मात्र 40% से 60% तक भुगतान किया जाता है। जबकि उनसे पुरुषों के मुकाबले कठिन काम करवाया जाता है। उनसे ज्यादा समय तक अधिक काम लिया जाता है। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के रोजगार और व्यवसाय में भेदभाव सम्बन्धी 1951 में हुए सम्मेलन की सिफारिशें मान ली गईं थीं लेकिन 1975 में अनेक देशों के बारे में प्रकाशित सर्वेक्षण के नतीजों से पता चलता है कि व्यवहार में महिलाओं को दी जाने वाली मजदूरी में काफी अन्तर और भेद भाव है।

पश्चिम बंगाल में किये गये दो अध्ययनों के निष्कर्ष से भी इस बात की पुष्टि होती है कि महिलाओं को पुरुषों से कम भुगतान किया जाता है। वे अधिक समय तक कार्य करती हैं और घरेलू काम काज, बच्चों की देखभाल के कठिन दायित्व को भी निभाती हैं। प्रतिदिन उन्हें 14 से 16 घंटे काम करना पड़ता है।

पुरुषों का घर से बाहर जाना

अधिकतर गांवों में पुरुष गांव छोड़कर बाहर काम करने चले जाते हैं। इससे महिलाओं पर और ज्यादा बोझ पड़ता है। टैक्नोलॉजी की उन्नति, उद्योग धंधों के विस्तार के कारण भूमिहीन लोगों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। जो लोग शहरों में काम करने जाते हैं, वे कुछ समय बाद आर्थिक सहायता नहीं दे पाते। इस कारण महिलाओं को ही भरण-पोषण की पूरी जिम्मेदारी उठानी पड़ती है। लगभग 18.7% घर ऐसे हैं जिनको महिलाएं केवल अपने बलबूते पर चलाती हैं। प्रो. एम.एस. स्वामीनाथन के अनुसार 25% गरीब परिवारों में रोटी कमाने वाली स्वयं महिलाएं ही हैं।

यद्यपि महिलाएं कार्य का अतिरिक्त भार उठाती हैं लेकिन खेती से होने वाली आमदनी पर उनका अधिकार नहीं होता। फसल बेचने और पैसों का हिसाब करने में पुरुष आगे आते हैं। हरियाणा में किये गये अध्ययन के अनुसार पुरुषों के शहरों में काम करने चले जाने पर महिला मजदूरों की संख्या काफी बढ़ गई।

वातावरण

वास्तव में यह महिलाओं के भरोसे ही संभव है कि पुरुष अन्य जगह काम करें फिर भी घर की अर्थव्यवस्था यथावत चलती रहे। इसमें प्रकृति से प्राप्त आवश्यक वस्तुओं जैसे जल, ईंधन के लिए लकड़ी, साग-पात, चारा आदि की प्राप्ति महिलाओं के परिश्रम से हो जाती हैं। लेकिन बहुत-सी वस्तुएं जो पहले मजदूरी के साथ-साथ बिना दाम के मिल जाती थीं, अब नहीं मिल पातीं। इससे कठिनाई पैदा हो रही है। आदिवासी क्षेत्रों में आमदनी पूरी करने के लिए महिलाएं गैर-कानूनी तरीके से जंगल से लकड़ी काटकर बेचती हैं।

बच्चों की देखभाल की उचित व्यवस्था नहीं हो पाती। महिलाओं के पास उनकी ओर ध्यान देने को समय नहीं होता। रोज 15 घंटे काम करके उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर असर पड़ता है। काम नहीं करें तो गुजारा कैसे हो।

शिक्षा

विकासशील देशों में महिलाओं की दशा सुधारने के

लिए उन्हें अक्षर ज्ञान और अंक ज्ञान कराने का कार्य बड़ा चुनौती पूर्ण है। लेकिन स्कूल जाने वाली लड़कियों की संख्या में वृद्धि हो रही है। यों बहुत-सी लड़कियां बीच में ही पढ़ाई छोड़ देती हैं। 46.89% पुरुषों की तुलना में केवल 29.82% महिलाएं ही साक्षर हैं। देश के 160 जिलों में केवल 16% महिलाएं ही साक्षर हैं। इससे अधिक दयनीय स्थिति और क्या हो सकती है। स्थिति को सुधारने के लिए गंभीर प्रयास अपेक्षित हैं। महिलाओं की उत्पादकता बढ़ाने के लिए भी उन्हें शिक्षित करना जरूरी है।

टैक्नोलॉजी का चयन

नई टैक्नोलॉजी से महिलाओं को फसल की कटाई के बाद होने वाली खाद्यान्न के नुकसान को रोकने में सहायता मिलेगी। बचाये गये अनाज से गरीब परिवारों का भरण-पोषण हो सकता है। संसाधन इकाइयां लगाई जा सकती हैं जिनमें गरीब महिलाओं को रोजगार मिल सकता है, वे अपनी आय बढ़ा सकती हैं। पानी और ईंधन की उन्नत सप्लाई व्यवस्था से महिलाओं का मुश्किल और श्रमसाध्य काम कम हो सकता है। लेकिन बिना आमदनी के महिलाएं नई आर्थिक गतिविधियां नहीं अपना सकतीं। अपना अपने परिवार का स्वास्थ्य नहीं सुधार सकतीं। पढ़ने के लिए कक्षाओं में नहीं जा सकतीं।

कुछ अध्ययनों में ग्रामीण महिलाओं के कार्यों में टैक्नोलॉजी अपनाने और बुनियादी टैक्नोलॉजी के साथ उसके सम्बन्धों की ओर ध्यान दिया गया है। इनमें तीन बातों पर ध्यान दिया गया है (1) कृषि में यंत्रों का प्रयोग और उससे महिलाओं के कामों में पड़ने वाला प्रभाव, (2) पुरुषों और महिलाओं के बीच काम का असमान वितरण, तथा (3) महिलाओं के काम की दशाएं और उनके जीवन में सुधार के लिए बुनियादी टैक्नोलॉजी के उपयोग की जरूरत।

कृषि कार्यों में यंत्रों का प्रयोग

कई बार किये गये अध्ययनों से पता चला है कि कृषि क्षेत्र में मशीनों का प्रयोग उन्हीं कार्यों के लिए होता है जो पुरुष करते हैं। जहां तक महिलाओं का सम्बन्ध है उन्हें फिर भी शारीरिक मेहनत का थका देने वाला काम ही करना पड़ता है। यंत्रों के सम्बन्ध में सोच-विचार की पद्धति यह है कि यंत्र-प्रधान टैक्नोलॉजी से श्रमिकों की टोली का या तो इस्तेमाल होता है या उनकी जरूरत ही नहीं रहती क्योंकि लोगों का काम मशीन कर देती है या फिर मशीनों पर पुरुषों को काम मिल जाता है जबकि महिलाओं से काम छिन जाता है।

यह बात निराई-गुड़ाई, छंटाई, फसलों की कटाई और ढुलाई जैसे सामान्य कृषि कार्यों के अलावा खाद्य संसाधन निर्माण कार्यों से सम्बन्धित कई कामों एवं अन्य कार्यों पर लागू होती हैं। जम्मू और कश्मीर में सूत कातने की मशीनें लगाने से इस काम में लगी 20,000 महिलाओं की आजीविका पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

उत्पादन और वितरण के परंपरागत क्षेत्रों में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका और उनके साथ जुड़े सम्बन्धों के बावजूद यह देखा गया है कि सभी स्तरों पर प्रयोग लाने वाले नये तकनीक साधनों का उनको कोई लाभ नहीं मिल पाता या फिर बहुत कम मिलता है। इस कारण उनकी उत्पादकता का स्तर स्थिर ही रहता आया है जबकि उत्पादन के साधनों का उपयोग करने की क्षमता के कारण पुरुषों की उत्पादन सामर्थ्य में वृद्धि हुई है। कृषि कार्यों के सम्बन्ध में कार्य बढ़ जाने पर महिलाओं की शारीरिक क्षमता का ही पहले से अधिक शोषण होता है। उत्पादन में सहायक यंत्र साधनों पर उनका नियंत्रण नहीं होने से वे कोई राहत नहीं पातीं। इस तरह अनेक देशों में महिलाएं कहीं अधिक समय तक काम से जूझती हैं।

बुनियादी टैक्नोलॉजी

टैक्नोलॉजी के उन्नत होने का दो प्रकार से प्रभाव पड़ता है। एक ओर तो महिलाएं अधिक रोजगार के अवसर पाती हैं दूसरी ओर वे कम कुशलता वाले और ऐसे कार्यों में लगाई जाती हैं जहां मशीनों का कम प्रयोग होता हो।

विकास की प्रक्रिया में टैक्नोलॉजी की निर्णायक भूमिका है। जिन नई तकनीकों के उपयोग से महिलाओं को भूमि पर अधिकार और उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण का मौका मिल सकता है जिससे वे अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकती हैं, उससे वे भूमि न होने, धन की कमी और शिक्षा के अभाव के कारण दूर रह जाती हैं। इस कुचक्र के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं पुरुषों पर निर्भर रहती हैं और गांव छोड़कर शहर जाने की प्रवृत्ति जोर पकड़ती है।

कृषि उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में जैसे खाद्य फसलें, नकदी फसलें उगाने, साग-सब्जी, फलों के बगीचे और

मछली पालन में महिलाएं अपना महत्वपूर्ण योग देती हैं। हरित क्रांति के परिणामस्वरूप गांवों में बेरोजगारी बढ़ी है और आय के वितरण में अव्यवस्था अथवा असमानता पैदा हुई है। भारत में कुल मिलाकर महिलाओं के रोजगार के अवसर कम हुए हैं यह बात 1981 की जनगणना में सामने आई है। पंजाब में किये गये अध्ययन से ज्ञात हुआ कि कृषि के मशीनीकरण के बाद जहां पुरुषों को मशीन चलाना सिखाया गया वहां महिलाओं को परंपरागत मोटे और अकुशल कार्य करने को लगा दिया गया। रोजगार के परंपरागत अवसर छिन जाने से गरीबी का सामना करती महिलाओं को मजबूर होकर शहरों में काम तलाशने जाना पड़ा। कुपोषण की स्थिति यह है कि भूमिवान घरों की महिलाओं की तुलना में भूमिहीन महिलाओं के दुगने बच्चे काल-कवलित हो गये। जिंदा बच्चों की कुपोषणता सर्वाधिक दयनीय स्तर पर है जिनमें लड़कियां सबसे ज्यादा शिकार हैं।

भूमिहीनता की स्थिति में किसानों को अपने लिए मजदूरी ढूंढना और लाजिमी हो जाता है। टैक्नोलॉजी के प्रयोग से महिलाओं की पारम्परिक आर्थिक योगदान की क्षमता भी प्रभावित हुई है क्योंकि टैक्नोलॉजी की बागडोर और उनसे मिलने वाले लाभ एवं आमदनी पर मुख्यत: पुरुषों का अधिकार होता है।

कृषि के क्षेत्र में टैक्नोलॉजी का प्रयोग प्रमुख रूप से नकदी फसलों और कुछ चुने हुए खाद्यान्न उगाने के लिए होता है। इससे बहुत से बड़े किसान घरानों की महिलाओं ने खेती का काम करना बंद कर दिया है। खेती में महिलाओं के कार्य-योगदान को भी अब विशेष महत्व नहीं दिया जाता है।

जब तक आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से महिला और पुरुष का भेद भाव कायम है, खास तौर पर ग्रामीण महिलाओं के लाभ के लिए शिक्षा, प्रशिक्षण और टैक्नोलॉजी अंतरण तथा धन उपलब्धि कार्यक्रम चलाये जाने जरूरी हैं।

सभी जगह महिलाओं की असमान समितिका मुख्य कारण अल्प विकास के परिणामस्वरूप फैली हुई गरीबी और अधिकतर जनसंख्या का पिछड़ापन है। विकसित और विकासशील देशों में पुरुष-महिला में भेदभाव के कारण स्थिति और बिगड़ी हुई दिखाई देती है।

पुरुष-महिला असमानता के ऐतिहासिक कारण हैं — जिनके पीछे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तत्व विद्यमान हैं। विभिन्न देशों की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों के अनुसार इस भेदभाव के कई रूप दिखाई पड़ते हैं।

विकास में महिलाओं की कम भागीदारी का बुनियादी कारण पुरुषों और महिलाओं के बीच कार्य का विभाजन है। जबकि पुरुष को केवल घर से बाहर कार्य करना होता है, महिलाओं को सन्तानोत्पत्ति, बच्चों की देखभाल, चूल्हा-चौका और अन्य घरेलू कार्यों का अनिवार्य बोझ उठाना पड़ता है जिसे समाज ने औरतों का काम कहकर छोड़ दिया है। उन्हें निर्णय-प्रक्रिया में भाग लेने और विकास के कामों से वंचित रखकर साधनों पर अधिकार और जीवन के अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों से दूर रखा जाता है।

परिवार के भीतर और बाहर पुरुषों को महिलाओं से अधिक महत्व दिया जाता है। इस प्रकार महिलाएं दोहरी मार सहती हैं। सबसे बढ़कर गरीबी और विकास की कमी ने असमानताओं में और वृद्धि की है।

दीर्घकाल से चले आ रहे भेदभावपूर्ण रवैये के कारण विकास की गति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है जिसे महिलाओं की स्थिति बहुत तीखी तरह से उजागर करती है। विश्व की कुल वयस्क जनसंख्या में 50%महिलाएं हैं जो जाहिर तौर पर तो कामगारों की कुल संख्या का एक-तिहाई हैं लेकिन वास्तव में दो तिहाई काम का बोझ उठाती हैं, जिन्हें विश्व की आमदनी का केवल दसवां भाग पल्ले पड़ता है तथा जिनका विश्व की सम्पत्ति के एक प्रतिशत से भी कम पर अधिकार है।

गरीबी, सीमित आय कमाने की सामर्थ्य, रोजगार और शिक्षा की कमी इस बात के सूचक हैं कि जब तक महिलाओं को विकास के लाभ नहीं प्राप्त होते सामाजिक स्थितियों में सुधार नहीं हो पायेगा। इसीलिए खाद्य एवं कृषि संगठन ने कृषि, वानिकी, मत्स्य पालन तथा गृह अर्थशास्त्र और जनसंख्या सम्बन्धी अपने कार्यक्रमों में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं की स्थिति में सुधार को अपना लक्ष्य बनाया है। □

अनुवाद : पी.सी. पाठक
148,स्कूल ब्लाक
शकरपुर, दिल्ली-92

उत्तर प्रदेश में सूखा राहत कार्यक्रमों की स्थिति

सीताराम खोड़ावाल

वर्तमान मानसून अवधि में उत्तर प्रदेश में अभूतपूर्व सूखे की स्थिति उत्पन्न हो गई है। फसलों की क्षति के उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार प्रदेश के 57 जिलों में से 55 जिले गम्भीर रूप से सूखे से प्रभावित हैं। जून 1987 में सामान्य की 23.3%, जुलाई में 60.2% व अगस्त में 46.7% ही वर्षा हुई है। प्रदेश के कुल 112566 गांवों में से 88 प्रतिशत यानी 98868 गांव प्रभावित हैं। कुल 12.20 करोड़ जनसंख्या में से 8.41 करोड़ जनता प्रभावित हुई है। खरीफ की फसलों को सभी जिलों में भारी क्षति पहुँची है। खरीफ के कुल 120 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल में से 47 प्रतिशत यानी 55.7 लाख हैक्टेयर बोया हुआ क्षेत्रफल गम्भीर रूप में प्रभावित हुआ है तथा 40 प्रतिशत यानी 47 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल में कोई फसल नहीं बोई जा सकी है। बोई फसलों में 25 से शतप्रतिशत तक की हानि हो गयी है एवं यह कहा जा सकता है कि प्रदेश के अधिकतर जिलों में 80 प्रतिशत तक खरीफ की हानि हुई है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि प्रदेश में लगभग 3000 करोड़ रु. की फसल क्षतिग्रस्त हुई है जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्रों की सारी अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हुई है एवं सभी ग्रामीण निवासी सूखे के कारण त्रस्त हैं।

सूखे की स्थिति से निपटने के लिए प्रदेश सरकार द्वारा प्रारम्भ से ही कई कदम उठाये गये हैं। राहत कार्यों के लिए पर्याप्त धनराशि स्वीकृत की गई है एवं सामान्य कार्यक्रमों को तेजी से क्रियान्वित किया जा रहा है जिससे इस मुसीबत की अवधि में लोगों को राहत दी जा सके। इनका उच्च स्तर पर अनुश्रवण स्थापित किया गया। मुख्यतः निम्न प्रकार के कार्य आरम्भ किये गये हैं :—

प्रशासकीय

मंत्रिपरिषद् द्वारा प्रति सप्ताह सूखे की स्थिति व राहत कार्यों की समीक्षा की जाती है जिसमें सभी विभागीय कार्यों का परीक्षण किया जाता है और जहां आवश्यकता होती है वहां तत्काल वित्तीय स्वीकृति भी दे दी जाती है। इसके अतिरिक्त विस्तृत विचार विमर्श के लिए 6 सदस्यों की मंत्रिपरिषद की उप समिति भी गठित कर दी गयी है। मुख्य सचिव की अध्यक्षता में राज्य स्तरीय समीक्षा समिति गठित की गयी है जिसकी बैठक सप्ताह में दो बार की जाती है। इसी प्रकार मण्डल व जिला स्तर पर साप्ताहिक समीक्षा बैठकें आयोजित की गयी हैं जिनमें सभी अधिकारी भाग लेते हैं।

राहत कार्यक्रमों में जन प्रतिनिधियों का पूर्ण सहयोग किया जा रहा है एवं विभिन्न समितियों के माध्यम से उनके सुझाव भी प्राप्त किये जा रहे हैं। जिला एवं ब्लाक स्तर पर परामर्शदात्री समितियां गठित की गई हैं जिनमें सांसद, विधायक, ब्लाक प्रमुख आदि को सम्मिलित किया गया है।

राजस्व विभाग

खरीफ फसल की भारी क्षति को देखते हुए यह आदेश निर्गत कर दिये गये हैं कि जिन क्षेत्रों में 50 प्रतिशत से अधिक की क्षति हुई है वहां वर्तमान खरीफ का भू-राजस्व माफ कर दिया जाय। परिस्थितियों को देखते हुए इस अवधि को बढ़ा दिया जायेगा। इसी प्रकार राजस्व विभाग द्वारा 10.66 करोड़ रु. की धनराशि मार्जिन मनी में से अनुग्रह अनुदान व अन्य मदों के लिए आबंटित की गयी है जो राहत कार्यों के लिए व्यय की जायेगी। प्रदेश में लगभग 84 लाख निराश्रित व अपाहिजों के लिए जो कार्य नहीं कर सकते 40.32 करोड़ रुपये की धनराशि की निःशुल्क खाद्यान्न की व्यवस्था का प्रस्ताव है।

सिंचाई विभाग

प्रदेश में कुल 25000 राजकीय नलकूप हैं। खरीफ फसल को बचाने के लिए व रबी की सिंचाई क्षमता में वृद्धि करने के लिए आदेश दिये गये हैं कि इन नलकूपों की खराबी को तुरन्त ठीक किया जाय एवं इसके लिए अतिरिक्त धनराशि आबंटित की गयी है। इसी प्रकार नहरों की सफाई, पुलों की

उत्तर प्रदेश में अभूतपूर्व सूखा

मरम्मत व निर्माण के लिए भी अतिरिक्त व्यवस्था की गयी है जिससे सिंचन क्षमता को सुदृढ़ किया जा सके। नहरों में पानी की कमी हो जाने के कारण उसके कटान के केसों में वृद्धि हुई हैं एवं इसे रोकने के लिए तथा नलकूपों के मोटर व ट्रांसफार्मरों की चोरी को समाप्त करने के लिए जिला प्रशासन को कड़ी कार्यवाही करने के आदेश दे दिये गये हैं।

कृषि विभाग

अगस्त के अन्तिम सप्ताह की वर्षा की स्थिति को देखते हुए खरीफ में अल्पकालीन फसलें लिए जाने का प्रयास किया जा रहा है। ऐसा प्रयास है कि एक लाख हैक्टेयर अतिरिक्त क्षेत्रफल में तोरिया की फसल उगाई जाय तथा 40 हजार हैक्टेयर अतिरिक्त क्षेत्रफल में अंगती आलू की फसल लेने का प्रयास किया जा रहा है। इनके लिए बीज की व्यवस्था कर दी गयी है। इसी प्रकार चारे का क्षेत्रफल भी बढ़ाया जा रहा है जिससे पशुओं की खुराक के लिए समस्या उत्पन्न न हो। इस अल्पकालीन फसलों के बाद रबी भी ली जा सकेगी।

रबी की फसल के लिए पूरी तैयारी आरम्भ कर दी गयी है तथा योजना बना ली गयी है। रबी के लिए बीज तथा उर्वरक का प्रबन्ध किया जा रहा है। विभिन्न क्षेत्रों में वास्तविक सिंचन क्षमता का मूल्यांकन कर लिया गया है एवं नहरों में जिस प्रकार की सिंचाई उपलब्ध हो सकेगी उसी प्रकार की फसल लेने के लिए किसानों को प्रेरित किया जायेगा।

सहकारिता

वर्तमान फसल की क्षति को देखते हुए क्षतिग्रस्त क्षेत्रों में शार्ट-टर्म ऋण को मध्यकालीन ऋण में परिवर्तन किया जा रहा है। इसी प्रकार रबी में किसानों की ऋण सुविधा बढ़ाने के लिए कदम उठाये जा रहे हैं। इसके सदस्य बनने के लिए उन्हें बैंकों से ऋण दिलाया जा रहा है तथा अंश धन के 10 गुने के बजाय 15 गुने ऋण वितरण की व्यवस्था की

जा रही है। अतिरिक्त ऋण वितरित करके रबी फसल के लिए किसानों की आर्थिक क्षमता बढ़ाई जायेगी। रबी में गत वर्ष के 170 करोड़ रु. के विरुद्ध इस वर्ष 250 करोड़ का ऋण वितरित किया जायेगा।

विद्युत

यद्यपि नदियों व जल स्रोतों में पानी की कमी के कारण विद्युत सृजन में कमी आयी है परन्तु फिर भी शहरी व औद्योगिक क्षेत्रों की आपूर्ति को कम करके ग्रामीण क्षेत्रों को अधिक से अधिक बिजली दी जा रही है। सभी जिलों में न्यूनतम 10 से 12 घण्टे तक बिजली पहुँच रही है एवं इस सम्बन्ध में किसानों ने व जनप्रतिनिधियों ने गहरा संतोष व्यक्त किया है। इसी प्रकार राजकीय नलकूपों को 17 घण्टे तक बिजली दी जा रही है। निजी व राजकीय नलकूपों के उर्जीकरण की योजना में वृद्धि की जा रही है एवं इसके लिए विद्युत विभाग को अतिरिक्त धनराशि आबंटित की गयी है। ट्रांसफार्मरों की आपूर्ति के लिए भी अतिरिक्त व्यवस्था की गयी है।

पेयजल योजना

वर्षा की कमी के कारण भू-गर्भ में जल का स्तर नीचे गिर गया है, जिसके कारण गांवों में कुएं सूख गये हैं और तालाबों में पानी कम हो गया है। इसके लिये ग्रामीण जल आपूर्ति योजनाओं के कार्यों को आगे बढ़ाया जा रहा है एवं लगभग 100 करोड़ रु. के वार्षिक कार्यक्रम को मार्च 1988 के बजाय नवम्बर 1987 तक पूर्ण करने का प्रयास किया जा रहा है। प्रदेश के लगभग सभी गाँवों से पीने के पानी की अतिरिक्त सुविधाओं की माँग आ रही है। गत कुछ वर्षों में इण्डिया मार्क-2 के हैण्ड पम्प बहुत सफल हुये हैं एवं इस कार्यक्रम को बृहत स्तर पर चलाने के लिये केन्द्रीय सरकार से भी अतिरिक्त धनराशि की माँग की गई है। फिलहाल प्रदेश सरकार द्वारा 7 करोड़ रु. की धनराशि अतिरिक्त हैण्ड पम्पों व कुओं के निर्माण के लिये स्वीकृत की गई है एवं 3 करोड़ रु. की धनराशि पुराने हैण्ड पम्पों की मरम्मत के लिये अलग से दी गयी है। यह भी आदेश दिये गये हैं कि तालाबों व जल स्रोतों को नहरों व राजकीय नलकूपों से भर दिया जाए जिससे मनुष्यों व पशुओं को अतिरिक्त जल

सूखे की स्थिति से निपटने के सरकारी प्रयास

आपूर्ति की सुविधा दी जा सके। सुदूर के अभावग्रस्त गांवों में टैंकों, ड्रमों आदि से पानी पहुँचाया जा रहा है। पर्वतीय क्षेत्रों में खच्चरों से भी पानी पहुँचाया जा रहा है।

रोजगार कार्यक्रम

वर्तमान वित्तीय वर्ष में 122 करोड रुपये एन.आर.ई.पी.व 117 करोड़ आर. एल.ई.जी.पी. के लिये उपलब्ध हैं। इनसे 1000 लाख मानव दिवस का कार्य सृजन होगा। यह आदेश दिये गये हैं कि सभी योजनाओं को आगे बढ़ाया जाय तथा अधिक से अधिक संख्या में ग्रामीण श्रमिकों को रोजगार की सुविधायें प्रदान की जायें। प्रदेश सरकार द्वारा 13 करोड़ रु. की अतिरिक्त धनराशि रोजगार कार्यक्रमों के लिये जिलों में आबंटित कर दी गई है एवं इसका भी कार्य आरम्भ हो गया है। सिंचाई, सार्वजनिक निर्माण विभाग, अल्प सिंचाई आदि विभागों के सामान्य कार्यक्रमों में भी बड़ी मात्रा में रोजगार सृजन होता है एवं इन योजनाओं के क्रियान्वयन को आगे बढ़ाया जा रहा है जिससे वर्तमान में रोजगार की सुविधायें बढ़ सकें। क्षेत्र की वास्तविक आवश्यकता को देखते हुये 206 करोड़ रुपये की अतिरिक्त धनराशि की केन्द्र से मांग की गई है। भविष्य की परिस्थितियों को देखते हुए इस मात्रा को बढ़ाना होगा।

अल्प सिंचाई

यह प्रयास किया जा रहा है कि रबी के लिये सिंचन क्षमता में वृद्धि की जाय। इसके लिये अल्प सिंचाई के साधन सबसे उपयुक्त पड़ते हैं। वर्तमान वित्तीय वर्ष में 65 हजार फ्री बोरिंग का लक्ष्य रखा गया था। इसमें 60 हजार की वृद्धि करके अब 1.25 लाख फ्री बोरिंग की जायेगी जिसे नवम्बर 1987 तक पूर्ण कर लिया जायेगा जिससे 6.25 लाख हैक्टेयर की अतिरिक्त सिंचन क्षमता में वृद्धि होगी। इसी प्रकार किसानों को पम्प सेट खरीदने व ट्यूब वैल लगाने के लिये भूमि विकास बैंक व व्यावसायिक बैंकों से ऋण की सुविधाओं में वृद्धि की जा रही है।

केन्द्रीय सरकार से सहायता

प्रदेश सरकार द्वारा विभिन्न राहत कार्यों के लिए केन्द्र सरकार से और राशि उपलब्ध कराने की माँग की गई है। इस सहायता से करोड़ों की जनसंख्या जो सूखे से त्रस्त है और वह शासन से विभिन्न प्रकार की सहायता की अपेक्षा कर रही है को पूरा किया जायेगा मुख्यतः सिचाई साधनों को बढ़ाने व सुदृढ़ करने के लिये, विद्युत आपूर्ति सुदृढ़ करने के लिए तथा पीने के जल आपूर्ति के साधनों में वृद्धि करने के लिये भी इस धन राशि का इस्तेमाल किया जायेगा। इस समय हमारा मुख्य प्रयास यह है कि रबी की फसल पहले से अच्छी ली जानी चाहिये एवं मनुष्यों व पशुओं के लिये किसी प्रकार की पीने के पानी अथवा खाद्यान्न की कमी नहीं होने दी जानी चाहिये। प्रदेश सरकार सूखे की स्थिति का सामना करने के लिये दृढ़ संकल्प है एवं प्रशासन की पूरी मशीनरी इस समय निष्ठा व परिश्रम से लगी हुई है। □

ए 36 बी, डी.डी.ए.फ्लैट्स
मुनीरका, नई दिल्ली

लड़कियों को पढ़ाइये

डा. विनोद गुप्ता

शहरों में रहने वाली लड़कियां भले ही स्कूल और कॉलेजों में जाकर पढ़ लिख लेती हों, पर ग्रामीण बालिकाएं तो आज भी शिक्षा से वंचित हैं। महिलाओं को शोषण और अत्याचारों से मुक्त कराने और उनमें चेतना जागृत करने के लिए उन्हें शिक्षित करना बहुत जरूरी है। क्योंकि अब नारी का कार्य क्षेत्र घर की चार दीवारी तक ही सीमित नहीं है वरन वे घर से बाहर भी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने लगी हैं।

लड़कियों को शिक्षित बनाने का मतलब है – परिवार और समाज को शिक्षित बनाना। अतः हर लड़की को पढ़ाना-लिखाना बहुत जरूरी है। बालिकाएं पढ़-लिख कर ही उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ सकती हैं। कई माता-पिता सोचते हैं कि उन्हें अपनी लड़कियों से नौकरी थोड़े ही करानी है जो उसे पढ़ाएं-लिखाएं। आप भले ही उनसे नौकरी न कराएं पर उन्हें पढ़ाने में क्या हर्ज है।

एक शिक्षित महिला अशिक्षित महिला की तुलना में अधिक अच्छी तरह से अपनी गृहस्थी चला सकती है और फिर शिक्षित मां अपने बच्चों में अच्छे संस्कार भी विकसित कर सकती हैं। अतः आपको लड़कियों से नौकरी कराना हो या नहीं, उन्हें पढ़ाना अवश्य चाहिए। पढ़ाई जीवन की वह अमूल्य निधि है जो कभी बेकार नहीं जाती। उसका उपयोग किसी न किसी रूप में होता रहता है और फिर यह आज की एक राष्ट्रीय आवश्यकता भी है।

लड़कियों का पढ़ा-लिखा होना इसलिए भी जरूरी है कि सब दिन समान नहीं होते। यदि महिलाएं शिक्षित नहीं हैं और दुर्भाग्य से विधवा हो जाती हैं अथवा तलाक ले लेती हैं तो उसके समक्ष भरण-पोषण की भारी समस्या उत्पन्न हो जाती है। पढ़ाई-लिखाई इन्हीं दुर्दिनों में काम आती है। उन्हें दूसरों के आगे हाथ फैलाने की जरूरत नहीं होती तथा वे स्वावलंबी बन सकती हैं।

शिक्षित लड़कियों में आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान की प्रबल भावना रहती है तथा उनमें हीन भावना नहीं आती। अनपढ़ और कम पढ़ी लिखी लड़कियों की बुद्धि एवं सामान्य ज्ञान बहुत मंद और सीमित होता है तथा वे कुंठाओं से ग्रसित रहती हैं। ऐसी लड़कियां परिवार और ससुराल में उचित सामंजस्य स्थापित नहीं कर पातीं। और फिर कम पढ़ी-लिखी लड़कियों के विवाह में भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। पढ़ी-लिखी लड़कियों के विचार विस्तृत और आधुनिक होते हैं लेकिन कम पढ़ी-लिखी लड़कियों की मानसिकता संकीर्ण और विचार दकियानुसी होते हैं। यही कारण है कि अनपढ़ लड़कियां समय के साथ अपने आपको एडजेस्ट नहीं कर पातीं। जो लड़कियां पढ़ी-लिखी नहीं होतीं उन्हें चार जनों के साथ बैठने और बातचीत करने में शर्म और झिझक महसूस होती है। ऐसे में ये लड़कियां किन्ही सार्वजनिक अथवा सामाजिक समारोहों में जाने से भी कतराती हैं और कुल मिलाकर उनका जीवन केवल घर की चार दीवारी में ही कैद हो जाता है और वे बाहरी दुनिया से वाकिफ नहीं हो पातीं। कूप-मंडूक बन कर जीना भी भला जीना है। अतः लड़कियों के शिक्षित होने में उनका, समाज का और देश का भला है।

लड़कियों को स्कूली शिक्षा तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए वरन उन्हें उच्च शिक्षा के भरपूर अवसर प्रदान करने चाहिए। लड़कियों में प्रतिभा की कोई कमी नहीं होती आवश्यकता इस प्रतिभा को विकसित करने की है। अनेक राज्यों में तो लड़कियों के लिए स्कूली शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक निःशुल्क है अतः गरीब माता-पिता भी अपनी लड़कियों को पढ़ा-लिखा सकते हैं। इसके अलावा अनेक सामाजिक संगठन और सरकार गरीब तथा मेधावी छात्र-छात्राओं को छात्रवृत्तियां भी प्रदान करती हैं ताकि वे

सुचारू रूप से अध्ययन कर सकें। लड़कियों को मेडिकल एवं इंजीनियरिंग में भी उनकी योग्यतानुसार प्रवेश दिलाना चाहिए। लड़कियों को स्वयं भी पढ़ने में रूचि होनी चाहिए ताकि वे तमाम अवरोधों के बावजूद अपनी मंजिल तक पहुंच सकें।

महंगाई के इस युग में यदि पढ़ी-लिखी महिलाएं अथवा लड़कियां अपने परिवार के संचालन में मदद करने हेतु नौकरी या व्यापार व्यवसाय करें तो इसमें बुराई क्या है? बल्कि परिवार की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी और जिससे संपूर्ण परिवार लाभान्वित होगा।

अतः माता-पिता तथा अभिभावकों को चाहिए कि वे अपनी लड़कियों को पढ़ा-लिखा कर योग्य और होशियार बनाएं तथा उनका जीवन सार्थक करें। लड़कियों को पढ़ा-लिखा कर उन्हें आगे बढ़ने के अवसर देने में माता-पिता की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो उन्हें अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह पूर्ण निष्ठा से करना चाहिए।

कुछ परिवारों में यह भी देखा गया है कि पढ़ाई के अवसर केवल लड़कों को ही प्रदान किए जाते हैं और लड़कियों को इससे निरूत्साहित किया जाता है। शायद इसके पीछे भावना यह होती है कि लड़कियों को पढ़ा-लिखा कर क्या करना है। आखिर उन्हें चूल्हा ही तो फूंकना है। लड़कों को इसलिए पढ़ाया जाता है कि आगे चल कर वह परिवार का सहारा बनेगा, किंतु माता-पिता का यह दृष्टिकोण क्या उचित है। लड़कियों को पढ़ाई के समुचित अवसर प्रदान न करके क्या हम उनके प्रति न्याय करते हैं। आज के प्रगतिशील युग में जबकि सीमित परिवार का महत्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है, लड़के और लड़कियों में इस तरह के भेद भाव बरतना बेमाने है। बल्कि अनुभव तो यह बताता है कि लड़कियां लड़कों से अधिक आज्ञाकारी, सेवाभावी और परिवार के प्रति समर्पित होती हैं। कई जगह तो यह भी देखा गया है कि परिवार के जवान लड़के निठल्ले और बेरोजगार घूमते-फिरते हैं और लड़कियां ही परिवार की गाड़ी को चला रही हैं। ऐसे में लड़कियों की पढ़ाई का महत्व कम क्यों आंका जाता है? □

156,महात्मा गांधी मार्ग,
बड़वानी-451 551 (म.प्र.)

सूखे से राहत

मोहन चन्द्र मंटन

कुदरत ने है यह कैसी आफ्त ढाई
जो नहीं समय पर वर्षा होने पाई।
यह है अकाल की छाया सूखा लाई –
औ है किसान की हृदय कली मुरझाई।
पर इस संकट में भी आशा लहराई
जो है सहायता शासन से मिल पाई –
कर ऋण माफी, भंडार बीज के खोले
जो फिर न कृषक का मन चिन्ता से डोले
बिजली पानी की है योजना बनाई
फिर खेत-खेत की हो जो सके सिंचाई
पशुओं को मिल जाए खाने को चारा
जो संकट आते ही टल जाये सारा।

ए-बी 904, सरोजिनी नगर
नई दिल्ली-23.

दूसरी नगरी

प्रेमशीला गुप्ता

मौसम! मत पूछिये कि यह कितना सुहाना था। मंगरू महतो के चेहरे पर अजब की खुशियां छायी थीं। कंधे पर गमछा रखे वह घर की सफाई-सुथराई में लगा था। मिट्टी की दीवारों पर गेरूआ रंग चढ़ चुका था और रधिया गोबर से फर्श लीप रही थी। शादी का हो-हंगामा था। उबटन का वक्त होते ही मुहल्ले की औरतें आ गयीं और जानकी को पकड़ कर आंगन में बैठा दिया गया। उबटन-तेल मलती हुई औरतें गाने लगीं –

जानकी गीत सुनकर खुश थी। उम्र कुल ग्यारह की थी। शादी-विवाह का सही अर्थ समझती भी नहीं थी। गीत के बोल अच्छे लगे तो हुलस पड़ी। इस हुलस के अतिरेक में वह यह भूल गयी कि बापू ने गहने की जो पोटली उसे दी थी उसने वह कहां रखी। याद आया तो दौड़ी मगर पोटली न मिली।

पोटली न मिलने से जानकी रोने लगी। पोटली के सारे जेवर उसके पसंद के थे। घुंघरूदार पायल और जड़ाऊ नथ उसे सबसे अधिक पसंद थी। इन दो जेवरों को बनवाने के लिए बापू को तीन बोरी अनाज बेचना पड़ा था। जानकी जोर-जोर से चिल्लाने लगी। क्षणभर में सार माहौल बदल गया। मंगरू की घरवाली रधिया बेहोश हो गयी। मंगरू के पांव भी थरथराने लगे। पागलों जैसी सूरत लिये वह समधिजी के घर पहुंचा – "मेरी इज्जत अब आपके हाथ में है, जिन्दगी रही तो दुगुणे जेवर बनवा दूंगा। एक ही तो बेटी है मेरी, जरा भी कसर न रखूंगा।"

– "मेरा भी एक ही बेटा है" मैं अपने सारे अरमान इसी के ब्याह में पूरा करना चाहता हूं। अब किसी हालत में बबूआ रजिन्दर की शादी आपके घर में नहीं करूंगा।

समधि साहब से टका-सा जवाब पाकर मंगरू निरूपाय हो गया। ढोल मजीरा बंद करा दिया गया। घर में मरघट-सा सन्नाटा छा गया और इसी सन्नाटे में मंगरू घर छोड़कर भागा।

इस घटना का गहरा असर जानकी के मन-मस्तिष्क पर पड़ा। वह अपने को अपराधी महसूस करती थी। उम्र बढ़ने के साथ-साथ उसकी समझदारी भी बढ़ती गयी। बापू के खेत-खलिहान का काम वह खुद सम्भालने लगी। उन दिनों सुप्रसिद्ध लेखक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी जीवित थे। उनका घर भी इस गांव से सटे गांव मटिहानी में था। जानकी की आंखों की उदासी देखकर उन्होंने समझाया – "बेटी! अभी से ऐसी उदासी क्यों? पढ़ना-लिखना, शुरू करो, तुम्हारा मन लग जायेगा।"

जानकी के मन में बेनीपुरीजी की बात बैठ गयी। वह पूरे मनोयोग से पढ़ाई में जुट गयी। समय बीतते देर कहां लगी, कुछ ही वर्षों में जानकी कालेज में पहुंच गयी।

एक्सप्रेस ट्रेन रात के अंधेरे को चीरती हुई पूरी रफ्तार से भाग रही थी। ट्रेन के सभी यात्रियों की आंखें नींद से अलसायी थी। जानकी ने एक नजर अपने साथ के यात्रियों पर डाली और दोनों पांव बर्थ पर रखकर सो गयी। अचानक एक झटके से ट्रेन रुकी और जानकी का सिर बगल में बैठे युवक की छाती से टकरा गया। वह हड़बड़ाकर आंचल सम्भालने लगी फिर युवक की ओर कनखियों से देखा किन्तु कोई विशेष प्रतिक्रिया न होते देख खुद ही पूछ बैठी – "यह कौन सा स्टेशन है?"

"आपको कहां जाना है?" युवक ने पूछा। उसका स्वर शांत और मधुर था। जानकी को अच्छा लगा, वह मुस्कुरा कर बोली – "मुझे हीराकुंड घाटी परियोजना के समीप जाना है।"

तब तो आराम से बैठी रहिये ट्रेन भोर होने तक पहुंचेगी।

बाप रे! मुझे तो भूख लगी है।

"खाना ला दूं?" युवक ने पूछा!

नहीं, आप सिर्फ पानी ला दीजिये, खाना तो आते वक्त मां ने दे दिया है।

युवक के पास पानी से भरा थर्मस था। उसने हंस कर थर्मस जानकी की ओर बढ़ा दिया। जानकी ने पोटली खोली और चने की दाल के साथ दो मोटी-मोटी रोटियां युवक की ओर बढ़ाते हुए कहा – "खाओ शुद्ध घी में चुपड़ी हैं। युवक

ने सस्नेह रोटियां थाम ली फिर पोटली में बंधे पकवानों की सुगंध लेता हुआ बोला "इतना बढ़िया खाना कहां ले जाओगी?"

बापू के पास, वे हीरा कुण्ड नदी घाटी परियोजना में काम करते हैं। इस बार जाड़े में घर न आ सके तो मां ने कहा कि तुम्हारा कालेज बंद है सो तुम्ही दे आओ।

— क्या तुम कालेज में पढ़ती हो? युवक ने जानकी की ओर गौर से देखते हुए पूछा। वह तुनक उठी। युवक को डांटती हुई वह बोली — "क्यों जी तुम शहरी लोग अपने को समझते क्या हो?-क्या गांव की लड़कियां पढ़ नहीं सकतीं?"

नहीं नहीं, ऐसा क्यों सोचती हो, मैं तो तुम्हारे कालेज में पढ़ने की बात जानकर खुश हूं। अच्छा तुम तकरार छोड़ो और अपने बापू का नाम, पता दो क्योंकि अगले स्टेशन पर मुझे उतर जाना है।

मेरा नाम जानकी है और बापू का नाम मंगरू महतो। युवक उठ खड़ा हुआ और जानकी की तरफ प्रेमभरी दृष्टि डालते हुए मुस्कराया फिर उतर गया। वह उसके जाने से उदास हो गयी। ट्रेन आगे बढ़ने लगी। इतनी देर तक वह युवक से बातें करती रही थी पर उसका नाम तक न पूछ पायी थी। अब अफसोस ही रहा था। सचमुच वह कितनी नादान है।

हीराकुण्ड पहुंचते-पहुंचते बहुत समय लग गया। बेटी को देखकर मंगरू महतो की खुशियां फूट पड़ी। वह उससे बहुत देर तक खेत-खलिहान, गांव-घर के सम्बन्ध में पूछता रहा। जानकी कभी हंस कर कभी मुस्कुरा कर अपने बापू के प्रश्नों का उत्तर देती रही फिर मंगरू महतो उसकी पढ़ाई के सम्बन्ध में पूछने लगा। जानकी फिर हंसी और बोली — "देखो बापू! तुम मेरी पढ़ाई-लिखाई की जरा चिन्ता मत करो, मैं अपनी पढ़ाई पर उतना ही ध्यान देती हूं जितना तुम इस बांध को बांधने में देते हो।

मंगरू अवाक्-सा बेटी का मुंह ताकने लगा। शायद सोच रहा था कि अब यह पहले वाली अल्हड़ जानकी न रही। यह तो जवाब देना सीख गयी है। हीराकुण्ड परियोजना की बात बताते हुए मंगरू अपनी बेटी से बोला — "बांध बांधना बड़ा पुनीत कार्य है, इससे देश में खुशहाली आयेगी, उद्योग बढ़ेगा, हरियाली छायेगी।"

— अच्छा बापू, अब तुम सो जाओ, रात गहरा रही है। मंगरू हंसा और भोले शंकर का नाम लेकर कम्बल पर पसर गया। जानकी अपने कोर्स की एक पुस्तक लेकर बैठ गयी किन्तु उसका मन इसमें नहीं लगा। ट्रेन की छोटी-सी मुलाकात वह भूल ही नहीं पाती थी। कितना हंसमुख और सरल शिष्ठ स्वभाव का था वह युवक। सच मानिये तो ऐसा शालीन स्वभाव का युवक अपने इलाके में कहां।

सुबह होते ही मंगरू काम पर जाने की जल्दी मचाने लगा। जानकी ने टोका — "रसोई क्या-क्या बनाऊं बापू?"

बढ़िया खाना पकाना बेटी, आज शनिवार का दिन है न, एक साहब यहीं खायेंगे।

अच्छा। जानकी बोली और बापू के जाते ही चूल्हा जलाने लगी। थोड़ी दूर जाकर मंगरू फिर लौटा — "बेटी, अपने गांव से जो कद्दू लायी हो उसका रायता बनाना और तुलसी मंजरी चावल, टमाटर,की चटनी भी।"

जानकी मुस्कुरा पड़ी। यह कौन साहब हैं जिन पर बापू का इतना ख्याल है, कितनी ही बातें सोचते हुए जानकी कद्दू काटने बैठ गयी। अजनबी युवक के लिये मन अब भी बेचैन था।

दोपहर को मंगरू आया तो जानकी खाना बना चुकी थी। घी की भीनी खुशबू पूरे कमरे में फैली थी। मंगरू आते ही बोला — "ललित बाबू। अन्दर आइये, आज मेरी बिटिया ने खाना पकाया है।"

बापू की आवाज सुनकर जानकी घर से बाहर निकल आयी पर ललित बाबू पर नजर पड़ते ही बुरी तरह सकुचा गयी। यह तो ट्रेनवाला वही युवक है जिसकी याद में वह व्याकुल थी। युवक जानकी को देखकर मुस्कराया किन्तु बोला कुछ नहीं। जानकी खाना परोस कर एक किनारे खड़ी हो गयी। खाना खाते हुए युवक जानकी की तरफ ही देख रहा था। वह अनायास ही जोर से हंस पड़ी फिर लजा कर वहां से भागी। उसके जाते ही ललित बाबू ने मंगरू महतो से पूछा — "आपने बेटी की शादी के लिये कुछ सोचा?"

सोचता तो दिन-रात हूं बाबू, किन्तु कुछ याद करके मंगरू चुप हो गया। ललित बाबू चौंके आप चुप क्यों हो गये?

मंगरू रो पड़ा। रो-रोकर उसने गहने की चोरी वाला सारा किस्सा सुना दिया फिर अपने भाग्य को कोसने लगा। ललित बाबू गम्भीर हो गये। कुछ क्षण वे चुप रहे फिर बोले — "मंगरू, यदि मैं आपकी बेटी से विवाह करने को तैयार हो जाऊं तो?

शेष पृष्ठ 17 पर

भूमि सुधार उपायों द्वारा ग्रामीण उत्थान

निर्मल गांगुली

कृषि-समृद्धि प्रौद्योगिकीय और संस्थागत नामक दो महत्वपूर्ण तत्वों पर बहुत कुछ निर्भर करती है। कृषि के विकास को प्रभावित करने वाले प्रौद्योगिकीय तत्वों में आवश्यक मात्रा तथा गुणता वाले कृषि साज-सामानों की उपलब्धता, खेतीबाड़ी के तरीके, अच्छे बीज, उर्वरक, कीटनाशक तथा फसल काटने की मशीन, ट्रैक्टर जैसे बेहतर कृषि-उपकरण शामिल हैं जो भूमि सुधार के उपायों की गैर-मौजूदगी में भी कृषि उत्पादकता को बढ़ाने में मदद करते हैं। संस्थागत सुधारों में किसानों को भूमि का स्वामित्व प्रदान करना शामिल है ताकि ग्रामीण अर्थव्यवस्था के उत्थान के काम में उनकी भी मदद ली जा सके।

भूमि सुधार जैसे संस्थागत आय काश्तकारी में सुधार तथा लगान के नियंत्रण के जरिए लगान में कमी आदि लाने के साथ ही काश्तकारों को अधिक सुरक्षा प्रदान करने में भी मदद पहुंचाते हैं। निस्संदेह, जमींदारी भू-संबंध, छोटे आकार के खेत, काश्तकारी अधिकारों की कमी, अधिक लगान आदि कृषि उत्पादकता बढ़ाने की राह में प्रमुख बाधाएं हैं। इन सारी बातों का किसानों द्वारा पूंजी बचाने और उसे कृषि में लगाने की क्षमता पर असर पड़ता है जिससे वे अपने श्रम का लाभ नहीं उठा पाते। बंधुआ मजदूरी, कम पारिश्रमिक और काश्तकारी की असुरक्षा से किसानों की मुक्ति होने पर ही कृषि-उत्पादकता बढ़ सकती है।

भारत की कृषि-अर्थव्यवस्था पर नजर रखने वाले यह तेजी से महसूस कर रहे हैं कि भूमि सुधार और प्रौद्योगिकीय परिवर्तन परस्पर सम्बद्ध नहीं हैं। वास्तव में, ये दोनों कृषि की प्रगति में प्रक्रिया में एक दूसरे के पूरक हैं। जाहिर है, प्रौद्योगिकीय सुधार अनुकूल संस्थागत ढांचे में ही ज्यादा असरदार हो सकते हैं और इस प्रकार कृषि तथा ग्रामीण विकास की गति तेज की जा सकती है।

इसलिए, भूमि सुधार एक ओर जोत की स्थिति को प्रभावित कर और हदबंदी कानूनों को लागू कर भूमि संसाधनों के अधिकाधिक प्रभावशाली उपयोग को सुनिश्चित करता है ताकि श्रम और पूंजी का अपव्यय हुए बगैर खेती की जा सके। दूसरी ओर भूमि सुधार कम सुविधा और लाभ वाले वर्गों के बीच कृषि-भूमि के पुनर्वितरण और खेत जोतने वाले लोगों द्वारा खेती के लिए रखी भूमि से संबंधित नियम व शर्तों में सुधार लाने का एक माध्यम है ताकि उनका शोषण न हो सके।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण श्रम रोजगार गारंटी कार्यक्रम आदि गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की सफलता के लिए भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भूमि सुधार के रूप में न्याय का पुनर्वितरण बहुत जरूरी है। इसका कारण यह है कि इसमें से अधिकांश कार्यक्रमों से एक न्यूनतम मात्रा में कृषि परिसम्पत्ति का निर्माण होता है। इस न्यूनतम परिसम्पत्ति के अभाव में ये कार्यक्रम उतने असरदार नहीं हो सकते। स्वभावतः, सातवीं योजना के दस्तावेज में भूमि सुधार उपायों और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के अविभाज्य संबंध को प्रमुखता दी गयी है।

भूमि सुधार का उद्देश्य सामाजिक न्याय की दृष्टि से कृषि भूमि का पुनर्वितरण करना और काश्तकारों एवं बटाईदारों को सुरक्षा तथा बचाव प्रदान करना और भूमि की हदबंदी करना है। सरकार की भूमि सुधार नीति का उद्देश्य लघु एवं सीमांत भू-मालिकों को प्रौद्योगिकी में सुधार लाने और कृषि साज-सामानों के लिए ऋण उपलब्ध कराने की गुंजाइश बढ़ाकर कृषि के आधुनिकीकरण की राह में आने वाली संस्थागत और प्रेरक रुकावटों को दूर करना है। इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए भारत में भूमि सुधार के अंतर्गत निम्नांकित संघटक शामिल हैं :—

(1) बिचौलियों को समाप्त करना;

(2) काश्तकारी संबंधी सुधार अर्थात् लगान का

नियंत्रण, काश्तकारों को निश्चित समय तक भूमि अपने पास रखने की सुरक्षा और उन्हें मालिकाना हक दिलाना;

(3) कृषि भूमि पर भूमि हदबंदी लागू करना और भूमिहीन कृषि मजदूरों तथा लघु-भूमालिकों को अतिरिक्त भूमि का वितरण;

(4) भूमि के रिकार्डों की व्यवस्था, रख रखाव और उन्हें अद्यतन बनाना; और

(5) कृषि भूमि की चकबंदी और भूमि को टुकड़ों में बंटने से रोकना।

बिचौलियों की समाप्ति

भारत की स्वाधीनता के समय, औपनिवेशिक शासन के असर के कारण देश की भूमि व्यवस्था ठीक नहीं थी और यह उत्पादकता तथा सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की दृष्टि से उपयुक्त नहीं थी। इसके परिणामस्वरूप, काश्तकारी पद्धति के पुर्नगठन की आवश्यकता महसूस की गई। इसलिए, स्वाधीनता के बाद जमींदारों, जागीरदारों और इनामदारों से बिचौलियों को समाप्त करने के लिए राज्य विधानमंडलों में कई कानूनों के जरिए 2 करोड़ जोतदारों को राज्य के सीधे सम्पर्क में लाया गया।

लेकिन अनेक मामलों में धन, शक्ति और पहुंच एवं प्रभाव के कारण कानून लागू होने के पहले ही धनी भू-मालिकों ने भूमि का विभाजन कर लिया। स्वयं खेती फिर से शुरू करने के बहाने, जमीन से किसानों को जबरन हटा दिया गया तथा काश्तकार बटाईदार बन कर रह गये। मगर यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि बिचौलियों के उन्मूलन से काफी संख्या में बंजर, परती एवं अन्य किस्म की भूमि सरकार को मिल गयी। इस भूमि का काफी हिस्सा भूमिहीन और सीमान्त किसानों को वितरित किया गया। लेकिन यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि देश के कुछ इलाकों में बिचौलिए अब भी मौजूद हैं जैसे महाराष्ट्र में देवस्थान, उड़ीसा में सेवा जागीरें और गोवा, दमण एवं दीव के कुछ स्थान। भूमि सुधार संबंधी योजना आयोग की समिति ने भी इसका उल्लेख किया है और भूमि के बेनामी स्वामित्व को समाप्त करने का सुझाव दिया है। निजी खेती को इस ढंग से परिभाषित किया जाना चाहिए कि गांव में भू-मालिक का रहना जरूरी हो।

काश्तकारी सुधार

बिचौलियों को समाप्त करने संबंधी कानून का उद्देश्य जोतदार को भूमि उपलब्ध कराना था। लेकिन यह मानना गलत होगा कि इससे काश्तकारी समाप्त हो जाएगी। कुछ-न-कुछ पट्टेदारी रहेगी ही। इसलिए जमीन को पट्टे पर देने को सामाजिक रूप से वांछनीय या प्रशासनिक रूप से न्यायसंगत नहीं माना जा सकता इसलिए, काश्तकारी पर की जाने वाली खेती के बुरे प्रभावों जैसे (क) लगान का नियंत्रण (ख) काश्त की अवधि की सुरक्षा; और (ग) काश्तकारों को मालिकाना हक दिलाना आदि को कम करने के उपाय करना जरूरी है।

यह ध्यान में रखना बहुत आवश्यक है कि काश्तकारी सुधारों से संबंधित राष्ट्रीय नीति का मूल उद्देश्य जोतदार को खेत का मालिक बनाना है। काश्तकारों को मालिकाना हद दिलाने के लिए देश के अनेक इलाकों में कानूनी प्रबंध किये जा चुके हैं। कुछ राज्यों में यह अधिकार भू-मालिक को समुचित मुआवजा देकर मिलता है।

लेकिन, अनेक मामलों में देखा गया है कि काश्तकारों की कमजोर स्थिति और जमीन की व्यापक भूख के कारण लगान का नियंत्रण काश्त की सुरक्षा संबंधी कानूनों का पालन करने की जगह उल्लंघन ही हो रहा है। कानूनी प्रक्रिया अधिक खर्चीली होने के कारण गरीब काश्तकार कानूनी लड़ाई लड़ नहीं पाते।

लगान में कमी काश्तकारी सुधार का एक महत्वपूर्ण अंग है। आंध्र प्रदेश (आंध्र इलाके), हरियाणा और पंजाब जैसे राज्यों में काश्तकारों से सकल उत्पाद के 1/4 और 1/5 के निर्धारित स्तर से अधिक लगान लिया जाता है। लगान की इस अधिक मात्रा को राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत दिशानिर्देशों के अनुरूप लाना जरूरी है। इसी तरह खेती के लिए जरूरी मकान बनाने, पानी की निकासी, कुएं आदि के लिए काश्तकार को मुआवजा दिया जाना भी जरूरी है।

भूमि की हदबंदी

भूमि हदबंदी का मुख्य उद्देश्य भूमि का अपेक्षतया व्यापक एवं समान स्वामित्व और उपयोग प्राप्त करना है। दूसरे शब्दों में अधिक लोगों के पास जमीन हो और वे उसका उपयोग करें तथा छोटे किसानों एवं जोतदारों और भूमिहीन मजदूरों को अधिक जमीन मिले। राष्ट्रीय भूमि सुधार नीति का उद्देश्य निजी खेती पर हदबंदी लागू करना है ताकि काफी मात्रा में अतिरिक्त जमीन ग्रामीण भूमिहीनों में वितरण के लिए उपलब्ध हो सके।

यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि अनेक मामलों में राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित की गयी हदबंदी अधिक थी और इस कानून के तहत काफी छूट दी गयी थी। कानून में खामियां भी कई थीं जिनके फलस्वरूप बहुत हद तक इन्हें अमल में नहीं लाया जा सका।

देश के विभिन्न भागों में लागू की गयी हदबंदी में कुछ हद तक तालमेल बढ़ाने और खामियों को दूर करने के लिएं मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन द्वारा 1972 में भूमि हदबंदी के बारे में राष्ट्रीय दिशा-निर्देश निर्धारित किये गये। तदनुसार, विभिन्न राज्यों में कानून बनाए गए।

भूमि हदबंदी कानूनों पर अमल के फलस्वरूप, दिसम्बर 1986 तक कुल 76 लाख 10 हजार एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की जा चुकी है। लेकिन इसका भी केवल 58.7 प्रतिशत हिस्सा ही वास्तव में वितरित हो पाया है।

एक और चिंताजनक बात यह है कि अनुमानित अतिरिक्त भूमि के मुकाबले वास्तविक अतिरिक्त भूमि काफी कम है। इसके कारण निम्नलिखित हैं :—

(1) पांच से अधिक सदस्य वाले परिवारों द्वारा हदबंदी से दुगनी मात्रा में भूमि रखना;

(2) परिवार में व्यस्क बेटे के लिए अलग हदबंदी सीमा निर्धारित करना;

(3) व्यवहार्य निजी कानून के तहत संयुक्त परिवार के प्रत्येक हिस्सेदार को हदबंदी की एक अलग सीमा की अनुमति देना;

(4) चाय, कहवा, रबड़ और कोको बागानों को छूट;

(5) धार्मिक शैक्षिक और दातव्य संस्थानों को सामान्य हदबंदी सीमा से अधिक जमीन रखने की छूट;

(6) हदबंदी कानूनों को निष्प्रभावी बनाने के लिए बेनामी और फर्जी लेन देन;

(7) छूट का दुरूपयोग और जमीन का गलत वर्गीकरण; और

(8) सार्वजनिक निवेश द्वारा सिंचाई के अंतर्गत लाई गयी भूमि पर हदबंदी का लागू न किया जाना।

भूमि के रिकार्डों की तैयारी, रख रखाव और उन्हें अद्यतन बनाना

कृषि सुधारों पर कारगर ढंग से अमल करने के लिए भूमि संबंधी सही और अद्यतन रिकार्ड बहुत जरूरी होते हैं। नये बीस सूत्री कार्यक्रम के तहत राज्यों से भूमि रिकार्डों को अद्यतन बनाने के लिए हर उपाय करने को कहा गया है। इस संबंध में उपेक्षा बरते जाने का एक कारण यह है कि भू-राजस्व गैर-योजना मद होने के कारण, राजस्व विभागों को सुधार लाने के लिए भूमि रिकार्डों के रख रखाव और उन्हें अद्यतन बनाने तथा आधुनिकीकरण के लिए राजस्व सरकारों से पर्याप्त धन नहीं मिलता। इसके लिए राजस्व प्रशासन में सुधार लाने तथा राज्यों में भूमि रिकार्डों को अद्यतन बनाने हेतु केन्द्रीय प्रायोजित एक योजना क्रियान्वित किये जाने का विचार है। समय आ गया है जब खास तौर पर बटाइदारों के रिकार्डों को तैयार करने तथा उन्हें अद्यतन बनाने के लिए एक विस्तृत भू-कर सर्वेक्षण किया जाना चाहिए।

कृषि भूमि की चकबंदी

भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के संदर्भ में, जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटने की समस्या गंभीर हो गयी है। इसे रोकने के लिए कृषि भूमि की चकबंदी तेजी से लागू करनी होगी। चकबंदी की प्रक्रिया से सभी भली-भांति परिचित हैं। एक किसान के पास पांच अलग-अलग स्थानों पर कुल मिलाकर चार एकड़ खेती है तो चकबंदी के बाद उसे एक ही स्थान पर चार एकड़ खेत दिया जाता है। चकबंदी से समय और श्रम की बचत होने के साथ ही मुकदमेबाजी कम होती है और सिंचाई आदि की सुविधा उपलब्ध होती है।

जमीन के अधिक छोटे-छोटे टुकड़ों को ध्यान में रखते हुए, कृषि में कुशलता और उत्पादकता बढ़ाने तथा गांवों के सुनियोजित विकास के लिए जमीन की चकबंदी को जरूरी माना गया है। यह उत्साहजनक है कि हरियाणा और पंजाब में भूमि की चकबंदी पूरी हो चुकी है और उत्तर प्रदेश में यह काम लगभग पूरा होने वाला है। लेकिन, अन्य राज्यों में उतनी प्रगति नहीं हो पायी है। आंध्र प्रदेश के (आंध्र इलाके), मणिपुर, त्रिपुरा, तमिलनाडु और केरल में भूमि की चकबंदी के लिए कोई कानून नहीं है। चकबंदी की प्रक्रिया में निम्नांकित समस्याएं हैं :—

(1) किसानों को अपनी पैतृक भूमि से काफी मोह रहता है और इसलिए वे उसे चकबंदी के लिए देने को तैयार नहीं होते।

(2) भूमि की गुणता में अंतर होने के कारण, चकबंदी की प्रक्रिया में और देर होती है।

(3) यह पाया गया है कि कई बार कुछ गरीब किसानों को ग्रामीण समाज में सामाजिक और आर्थिक स्तर-विन्यास के कारण तकलीफ उठानी पड़ती है। कभी-कभार, गरीब किसानों को बढ़िया भूमि के बदले खराब किस्म की भूमि मिलती है।

वैज्ञानिक ढंग से चकबंदी के द्वारा उक्त समस्याओं को सुलझाया जाना जरूरी है।

भूमि सुधार उपायों की प्रगति में तेजी लाना – कुछ सुझाव

भूमि सुधार उपायों पर तेजी से अमल करने के लिए जरूरी है कि इसे क्रियान्वित करने वाले लोग समानता और सामाजिक न्याय के प्रति वचनबद्ध हों। इसके साथ ही भूमि सुधार उपायों से लाभान्वित लोगों को ग्राम समितियों और प्रखंड समितियों में शामिल किया जाना जरूरी है। इससे हमें ग्रामीण भारत में विकेन्द्रित नियोजन का लक्ष्य प्राप्त करने में भी मदद मिलेगी। बेनामी स्वामित्व को घटाकर न्यूनतम करने के लिए निजी खेती की परिभाषा को अधिक कड़ा बनाना होगा।

देश के अधिकांश इलाकों में अद्यतन भूमि रिकार्ड उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए, भूमि रिकार्डों की पूरी व्यवस्था को फिर से ठीक ठाक करना जरूरी है ताकि भूमि सुधार का क्रियान्वयन एक आसान और सुनियोजित प्रक्रिया बन सके।

लेकिन, भूमि की चकबंदी का काम तेजी से चलाना होगा। यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त सावधानी बरतनी होगी कि चकबंदी से काश्तकारों और बटाइदारों के हितों की कटोती न हो।

सरकार को अतिरिक्त घोषित की गयी कृषि भूमि को अपने अधिकार में लेकर उसे योग्य वर्ग के लोगों में तेजी से वितरित करने के लिए हर प्रयास करने चाहिए।

यह भी बहुत जरूरी है कि सरकारों को नये आबंटियों को वित्तीय और अन्य मदद देने की सलाह दी जाए ताकि आबंटी किसी विलम्ब के बगैर उस भूमि पर खेती कर सकें।

यह कहा जा सकता है कि देश में भूमि सुधार सही दिशा में हो रहे हैं। हां, भूमि सुधार के उपायों पर तेजी से अमल किया जाना जरूरी है। स्वाधीन भारत में विकास से संबंधित प्रशासन को व्यापक और बड़ा बनाना होगा। इसके लिए जरूरी है कि प्रशासक संस्थागत सुधारों के प्रति वचनबद्ध हों। लेकिन हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि भूमिहीनों को केवल भूमि का आबंटन करना ही काफी नहीं है। जब तक भूमि सुधार से लाभान्वित होने वाले लोगों को पर्याप्त वित्तीय मदद कृषि साज-सामान, विपणन सुविधाएं आदि नहीं दी जातीं तब तक भूमि सुधार के वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते। इसलिए, भूमि सुधार और कृषि में प्रौद्योगिकीय परिवर्तन को और एकीकृत किया जाना जरूरी है। भारत जैसे अधिक आबादी वाले देश में जहां भूमि की कितनी कमी है वहां भूमि सुधार का क्रियान्वयन कितना अधिक जरूरी है, इसे दुहराने की आवश्यकता नहीं। इसके साथ ही, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम आदि गरीबी दूर करने के सभी विशेष कार्यक्रमों में कुछ न्यूनतम परिसम्पत्ति होने की बात मानी गयी है ताकि ये कार्यक्रम चलाए जा सकें। जाहिर है, भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में समृद्धि कायाकल्प और समानता लाने के लिए भूमि सुधार एक सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है। ☐

अनुवाद – सुमित मिश्र
7 विल्सन स्क्वायर,
डी.आई.जेड़ एरिया,
नई दिल्ली-110 001

पृष्ठ 13 का शेष

मगर आप तो ब्राहमण हैं? मंगरू हैरत में पड़ कर बोला। ललित बाबू मुस्कुराये, उन्होंने मंगरू को समझाया शादी-ब्याह में दरअसल बात समझोते की होती है। इसमें जात इत्यादि को तूल क्यों दिया जाये? मुझे आपकी जानकी पसन्द है और शायद उसे मैं...।

मंगरू विवाह के लिये राजी हो गया। दुल्हा खूबसूरत था। मिथिलांचल की युवतियों ने उसे खूब सराहा फिर दुल्हन बनकर जानकी पति के घर आ गयी। यहां शहरी माहौल था। भौतिक सुख-सुविधाओं के साथ-साथ ललित बाबू का असीमित प्यार मनुहार था। जानकी को यह दूसरी नगरी भी अच्छी लगी।

पुरनदाहा, देवघर,
बिहार

कृषि और ग्राम विकास के अन्य सहायक काम-धंधों में महिलाओं की भूमिका

राम नाथ यादव
एम.पी. आजाद

भारत की अधिकतर आबादी गांवों में बसी है। खेतीबाड़ी करने वाले ग्रामीण परिवारों के ही लोग कारखानों में भी काम करते हैं। गांवों के इन मजदूरों में कुशल और अकुशल हर तरह के मजदूर होते हैं। इसीलिए ग्रामीण मजदूरों के विकास से देश के कृषि और औद्योगिक विकास को भी गति मिलेगी।

भारत में कृषि क्षेत्र में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि खेती-बाड़ी तथा अन्य सम्बद्ध कामों में लगे मजदूरों में एक तिहाई संख्या महिलाओं की है। इसके अलावा उसे घर के काम-काज भी निबटाने होते हैं। परिवार में आर्थिक संकट की स्थिति में वह परिवार की आय बढ़ाने के लिए बाहर जाकर अन्य काम भी करती है।

कृषि में महिलाओं की अति महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए इस सम्बंध में एक अध्ययन किया गया है जिसका उद्देश्य है:

(1) विभिन्न जातियों में पारिवारिक ढांचे का अध्ययन करना,

(2) कृषि और सम्बद्ध कार्यों में महिला मजदूरों की भागीदारी का पता लगाना,

(3) विभिन्न कृषि कार्यों में महिला मजदूरों के उपयोग का विश्लेषण, और

(4) समूची कृषि आय में महिला मजदूरों के योगदान का अनुमान लगाना।

यह अध्ययन उत्तर प्रदेश में इटावा जिले के बिधुना विकास खण्ड के इस गांव की अलग-अलग जातियों के 200 परिवारों में किया गया। कृषि वर्ष 1985-86 में किए गए इस अध्ययन से पता चला कि उच्च जातियों तथा पिछड़ी जातियों के मुकाबले अनुसूचित जातियों के परिवारों के कुल सदस्यों तथा प्रति परिवार व्यस्क तथा महिला मजदूरों की औसत संख्या अधिक थी। इस क्षेत्र में कुल मजदूरों में से लगभग आधी महिलाएं थीं। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि खेती करने और पारिवारिक आय में महिलाओं का योग काफी अधिक है।

इसी प्रकार अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि विभिन्न जातियों की महिलाओं में शिक्षा के प्रसार में भी काफी विषमता थी। ऊंची जातियों में शिक्षा का प्रसार जहां 78 प्रतिशत था वहां पिछड़े वर्गों में 75 और अनुसूचित जातियों में केवल 23 प्रतिशत था। जाहिर है कि अनुसूचित जातियों के परिवारों में आर्थिक विपन्नता और निरक्षरता के कारण ही इन जातियों की महिलाओं का सामाजिक दर्जा कम है।

एक बात और सामने आई कि खेती-बाड़ी में मजदूरी करने वाली औरतों की संख्या भी जाति के आधार पर अलग-अलग थी । अनुसूचित जातियों की महिलाएं 71.4 प्रतिशत, पिछड़े वर्गों की महिलाएं 47.7 प्रतिशत तथा उच्च जातियों की केवल 36 प्रतिशत औरतें कृषि कार्यों में लगी हुई थीं। इस तरह अनुसूचित जातियों के पुरुषों के साथ-साथ बड़ी संख्या में महिलाएं भी खेतों में मजदूरी करती हैं।

गांवों की जो महिलाएं थोड़ी-बहुत शिक्षा पाने के बाद कृषि पर आधारित उद्योगों तथा अन्य उद्योगों में रोजगार पाना चाहती हैं उनमें भी अनुसूचित जातियों की महिलाओं की संख्या सबसे अधिक है। इसका कारण यह है कि परिवार के पास बहुत छोटी जोत होती है, जिससे पूरे परिवार का भरण-पोषण संभव नहीं होता। किन्तु अनपढ़ महिलाएं खेतों में ही काम करती रहती हैं।

एक तथ्य यह सामने आया है कि जिन कामों के लिए महिला मजदूरों को रखा जाता है उनमें प्रमुख काम है पौध लगाना। इसके अलावा खर-पतवार साफ करने तथा फसल-कटाई पर औरतों को लगाया जाता है। मजदूरी करने वाली औरतों की आय अनुसूचित जातियों में कुल पारिवारिक आय का 49 प्रतिशत थी जबकि पिछड़े वर्गों में यह हिस्सा केवल 2.50 प्रतिशत था।

इन सब आंकड़ों से सिद्ध होता है कि खेती-बाड़ी तथा पारिवारिक आय में महिलाओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। जाति के आधार पर देखा जाए तो चाहे कृषि हो या अन्य सम्बंधित उद्योग-धंधे, अनुसूचित जातियों की महिलाओं का योगदान सबसे अधिक है, किन्तु फिर भी अपनी पर्याप्त भूमि न होने और अशिक्षा के कारण ये महिलाएं समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त नहीं कर पाईं। यदि उन्हें शिक्षित किया जाए तो वे अन्य वर्गों की तुलना में तेज गति से उद्योग तथा अन्य कामधंधों में जाने को तत्पर हैं।

इसलिए ग्रामीण महिलाएं विशेषकर अनुसूचित जातियों की महिलाओं के लिए शिक्षा सुविधाएं जुटाना अत्यंत आवश्यक है । इससे परिवार की आय बढ़ाने के साथ-साथ उनका सामाजिक दर्जा भी बढ़ेगा तथा इनके रहन-सहन का स्तर और ऊंचा होगा। यही नहीं शिक्षा के प्रसार से वे नई टैक्नोलॉजी अपनाऐंगी और कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी। इस प्रकार ग्रामीण लोगों को आर्थिक और सामाजिक विकास में गति मिलेगी। □

अनुवादः सुभाष सेतिया

युवक जो ग्रामीणों का कृषि सलाहकार है

एल.एन. सती

ग्राम मायापुर, विकास क्षेत्र दशोली, जिला चमोली के श्री विजय प्रसाद मलासी लगभग 30 वर्ष की उम्र के एक सुशिक्षित एम.एस.सी. पास युवक हैं। सरकारी नौकरी करने के बजाय उन्होंने समाज सेवा तथा कृषि विकास कार्यों से जुड़े रहना पसन्द किया और पिछले 5 वर्षों से इस क्षेत्र में कार्यरत हैं।

समाज सेवी के क्षेत्र में आने पर उन्होंने सर्वप्रथम 'धूम्रपान वर्जित' अभियान चलाया और इसके लिए स्कूल-कालेजों में विभिन्न प्रतियोगिताएं आयोजित करवा कर स्कूली बच्चों/छात्रों को इनाम वितरण करवाया। उसके बाद लगभग दो वर्षों तक गाँवों में 'निर्धूम चूल्हे' के प्रयोग के लिए ग्रामीणों को प्रोत्साहित करते रहे। गोबर गैस संयंत्र के लाभों से भी लोगों को अवगत कराते रहे और इसके लिए स्वयं अपने घर पर बिना किसी सरकारी मदद के एक संयंत्र लगाया, जोकि सफ़लतापूर्वक कार्य कर रहा है।

अपने तथा आसपास के गाँवों में वृक्षारोपण के साथ ही साथ विभिन्न स्रोतों से ग्रामीणों को उन्नत किस्म के बीज आदि के निःशुल्क वितरण का काम भी उन्होंने किया। सोयाबीन की उपज बढ़ाने एवं सब्जी आदि की पौध स्वयं उगाकर ग्रामीणों को वितरित करने का कार्य भी वे करते रहे और पर्वतीय अंचलों में नए ढंग से खेती का प्रयोग तथा विकास करते रहे। परिणामस्वरूप क्षेत्र के लोग अब अच्छी फसल के साथ ही साथ मौसमी सब्जियां भी अच्छी मात्रा में उगाने लगे हैं।

गत वर्ष भारत-इटली कृषि विकास सहयोग की ओर से देहरादून में वितरित 25 जैतून तथा 5 बादाम के पेड़ उन्होंने स्वयं अपने घर पर प्रयोग के लिए लगाए हैं। ये सभी पेड़ जीवित हैं।

इनकी प्रतिभा और कार्य करने की क्षमता को देखते हुए ही इन्हें विभिन्न गोष्ठियों में भाग लेने के लिए बराबर बुलाया जाता है। गत अगस्त माह में भी वे कौसानी में आयोजित 'ऊसर भूमि उपजाऊ हो' गोष्ठी में भाग लेने गए थे, जिसमें कृषि विशेषज्ञ और वैज्ञानिक सम्मिलित हुए थे।

पन्त नगर कृषि विश्वविद्यालय एवं इसी प्रकार की कई अन्य संस्थाओं से सक्रिय रूप से जुड़े श्री मलासी बताते हैं कि पर्वतीय अंचलों में उगाई जाने वाली फसलों के चयन में उस स्थान विशेष की भौगोलिक परिस्थितियों को यदि हम सामने रखें और उसी के अनुरूप अनाज, सब्जियां, फल या आलू आदि उगाएं तो निश्चित रूप से ग्रामीण लघु किसानों को सफलता मिलेगी।

ग्रामीणों में चेतना एवं ज़ागरण पैदा करने के लिए वे कृत संकल्प हैं। इसी के साथ 'प्रतिभा के पलायन' को रोकना भी उनका एक उद्देश्य है। अपनी मेहनत और लगन के परिणामस्वरूप श्री मलासी आज अपने क्षेत्र की कृषि सलाहकार समिति के अध्यक्ष और ग्रामीण क़िसानों के भरोसेमन्द मार्ग दर्शक हैं। □

क्षेत्रीय प्रचार सहायक,
गोपेश्वर, चमोली

हिमालय की रङ· नारी

'हयात' फकसियाल

हिमालय की सीमान्त घाटियों में 'रङ' आदिवासी निवास करते हैं। ये किरात (मंगोल) मूल के हैं तथा शिव की उपासना करते हैं। शिवस्थली कैलाश यहां से बहुत नजदीक है। भगवान शिवजी ने महाभारत में अर्जुन को किरात वेष में ही दर्शन और पाशुपत अस्त्र दिए थे। अंग्रेजों ने इन पर 'भोटिया' नाम थोप दिया था, जो अब भी इसी नाम से जाना जाता है।

यह जाति सदा से हिमालय में भारत की प्रहरी रही है। ये 7000 फीट से 14000 फीट की ऊंचाई तक में रहते हैं। इनके मुख्य क्षेत्र नीती, माणा, जोहार, दारमा, ब्यॉस, चौंदांस आदि कहलाते हैं। वे सीढ़ीदार खेत बना कर आलू, पल्ती, फाकर, रामदाना राज्मा, गेहूं, जौं आदि की खेती करते हैं। चौंदॉस क्षेत्र बहुत मीठे सेब भी उगाता है। ये लोग भेड़, बकरी, गाय, बैल, जीब, याक, घोड़े, खच्चर आदि पशु पालते हैं जो ऊन प्राप्त करने, कृषि, सामान ढ़ोने और सवारी के काम आते हैं।

रङ· नारियां बहुत परिश्रमी होती हैं। पुरुष व्यापार, आजीविका आदि के लिए प्रायःघर से बाहर जाते हैं, तब स्त्रियाँ ही घर का सारा काम सम्भाल लेती हैं। वे प्रातः चार बजे से अपनी दिनचर्या शुरू करती हैं व सायं तक व्यस्त रहती हैं। चलते समय भी बच्चे को पीठ में बांध कर तकली से ऊन कातती रहती हैं। रात्रि भोजन के उपरान्त भी घन्टों ऊन कातती रहती हैं। खेती से अवकाश मिलने पर वह बुनाई के कामों में लग जाती हैं। च्युङ·, भाला, माटीस्या, रंगा, दन, कालीन आदि कलात्मक बुनाई साधारण करघे में कर लेती है। इनके अलावा पंखी, कम्बल, पट्ट, चुटका, थुलमा आदि भी रङ· नारी ही तैयार करती हैं। पुरुष केवल कताई, रंगाई में मदद करते हैं। 'रंग कम्बल' (चुटका) मुगल सम्राट अकबर को बहुत पसन्द था। जार्ज पन्चम की पत्नी इंग्लैंण्ड में महारानी मैरी (1867-1953) को कालीन बुनना सिखाने के लिए एक रङ· नारी 1912 में अपने पति के साथ लन्दन 'बंकिघम पैलेस' गई तथा दो वर्ष वहां रह कर लौट आई। इस प्रकार कभी सूर्यास्त न होने वाले साम्राज्य की साम्राज्ञी की शिक्षिका बनने का गौरव उसे प्राप्त हुआ।

रङ· नारी केवल कताई-बुनाई में ही नहीं, वह शासन और युद्ध कला में भी निपुण रही है। हुएनसांग की यात्रा वर्णन, बाणभट्ट के हर्ष चरित्तम् तथा कल्हण की राजतरंगिणी में रङ· क्षेत्र के 'स्त्री राज्य' का वर्णन आता है।

देव मन्दिर श्री नारायण आश्रम

सम्राट हर्ष ने बिना युद्ध किए रड· शासिका के सम्मुख हथियार डाल दिए थे। तिब्बत नरेश गम्पो के सैनिकों को बार-बार मुंह की खानी पड़ी थी। अन्त में कश्मीर नरेश ललितादित्य के एक सेना नायक अपने तीन अभियानों में कठिनाई से 'स्त्री राज्य' पर विजय पा सका। उसके बाद शासन और युद्ध पुरुषों ने अपने हाथ में ले लिया। पुनश्च चौदहवीं सदी में नेपाल के पृथ्वीमल्ल की सेना का आक्रमण होने पर फाकल तथा स्यंकुटी की नारियों ने पुरुषों की अनुपस्थिति में पुरुष वेश में युद्ध किया व आक्रामक सैनिकों की सिट्रांग नामक स्थान तक जा खदेड़ा।

रड· नारियों की वेश भूषा हिमालय के सौन्दर्य व जलवायु के अनुरूप है। ऊनी वस्त्र 'भाला' तथा उत्तरीय 'च्युङ·' कहलाता है। कमर में श्वेत 'ज्यूज्यं' बांधती है। पैरों में बौक्व और बाहों में रंगीन 'रकलचा' पहनती हैं तथा सिर पर 'च्युकती' ओढ़ती हैं। अधिकांशतः चाँदी, सोने और मूंगे के गहने पसन्द करती हैं।

हिमालय की कठोरता ने इन्हें कठोर जीवन दिया है। किन्तु यह कठोरता त्यौहारों, सामाजिक समारोहों आदि में नारी मधुर कण्ठों से कोमल, स्नेहिल तथा सरस गीत बन कर बहने लगती है। उन्मुक्त गीतों व नृत्यों से झंकार भरी रातें घाटियों को गुंजायमान कर देती हैं। ढाल व तलवार से युद्ध-नृत्य से अब रड· नारियों का मनोरंजन मात्र होता है। 1987 में प्रतीक्षित बारह वर्षीय कंडाली त्यौहार रड· नारियों की शौर्य गाथा की मधुर स्मृति होगी। कुछ रड· नारियों ने दूसरे क्षेत्र में भी यश प्राप्त किया है।

स्व. श्रीमती ज्सूली दताल ने लगभग 150 वर्ष पूर्व कैलाश मानसरोवर, रामनगर, हलद्वानी, टनकपुर तथा पशुपति नाथ काठमान्डु तक प्रत्येक दस मील पर लगभग 350 धर्मशालाओं का निर्माण कर अपना अलग कीर्तिमान स्थापित किया।

श्रीमती छाना देवी ने 1980-81 में धारचूला में विद्यालय भवन निर्माण हेतु दो लाख रुपये और कु. पद्मा गर्ब्याल को पुस्तक प्रकाशन हेतु पचास हजार रुपये दान में देकर अपने यश को चिर-स्थायी किया है। उनके अन्य दानों का कोई लेखा जोखा नहीं है।

कु. गंगोत्री गर्ब्याल ने सर्वप्रथम एम.ए. तक शिक्षा प्राप्त कर नारी शिक्षा हेतु अग्रदूत का कार्य किया। वे प्रधानाचार्या के पद से सेवा निवृत्त हुईं। पुनः वे पर्यावरण की सुरक्षा, मद्य-निषेध आदि का कार्य करती हुई उत्तराखण्ड की महान समाज सेविका के रूप में प्रसिद्ध हैं। सम्प्रति अवैतनिक व्यवस्थापिका के रूप में श्री नारायण आश्रम का कुशल संचालन भी करती हैं।

कु. चन्द्र प्रभा ऐतवाल कामेट व नन्दादेवी पर्वतारोहण अभियान सफल यशस्वी रहीं। किन्तु एवरेस्ट अभियान में भाग्य ने उनका साथ नहीं दिया।

स्वनिर्मित कालीन पर खड़ी रड नारी व बच्चे को पीठ पर बांधे बालिका

एवरेस्ट विजयिनी कु. बछेन्द्रीपाल उत्तरकाशी की निवासिनी के रूप में अवगत कराई गईं जबकि उनके पूर्वज नीति घाटी (चमोली) के मूल निवासी थे और रड· नारी समाज के कीर्ति स्तम्भ के रूप में विश्वविख्यात हैं।

हिमालय की रड· नारी का अपना इतिहास है और अपना अनुपमेय गौरव भी। वह समय दूर नहीं, जब विश्व उसे श्रम की देवी, वीरांगना तथा चरित्र व यश के मामले में हिमालय के शुभ्र एवं सुगन्धित ब्रह्म कमल के रूप में स्वीकार करेगा।

छिलासों — चौदांस,
पो. आ. पाँगू,
तहसील — धारचूला,
जिला — पिथौरागढ़,
उ.प्र.-262 547.

तीसरी किश्त

भारत में भूमि सुधार

निर्मल दास माहेश्वरी

भूमि की अधिकतम सीमा

भूमि की अधिकतम सीमा कानून, कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने के उपायों की अपेक्षा भूमि का पुनः वितरण सुनिश्चित करके सामाजिक न्याय दिलाने के निमित 1950 और 1960 के दशकों में बनाये गए थे। भूमि की अधिकतम सीमा के स्तर और उनको लागू करने की इकाई के बारे में विभिन्न राज्यों के विधायी प्राविधानों में काफी बड़ा अन्तर रहा। कानून द्वारा अनुमेय भूमि अंतरण तथा छिपे तौर पर भूमि-अंतरण और अधिकतम सीमा से छूट शायद दो अत्यधिक महत्वपूर्ण पहलू है जिन्होंने अधिकतम सीमा कानूनों को अप्रभावी बनाया है। बहुत से राज्यों में एक निर्धारित तिथि के बाद भूमि अंतरणों पर ध्यान न देने के लिये संशोधन किए गए हैं। बिहार तथा मध्य प्रदेश के अधिनियमों में कानून के लागू होने के बाद भी भूमि अंतरणों को मान्यता दी गई है। हालांकि, मैसूर ने भूमि अंतरणों पर रोक लगाई थी, फिर भी यह अधिसूचित करने की तारीख से था। चूंकि, कानून बनाए जाने के तत्काल बाद कोई तारीख अधिसूचित नहीं की गई थी, इसलिए कानून को निष्फल करने के लिये हस्तांतरण किए गए। उड़ीसा अधिनियम में न तो भूमि अंतरणों की अवहेलना करने के लिये कोई प्राविधान किए गए और न ही फालतू भूमि के अधिग्रहण हेतु राज्य के लिये कोई प्राविधान किए गए। यह विचित्र बात थी कि यह भू-स्वामियों पर छोड़ा गया था कि वे फालतू भूमि को बाजार मूल्य पर बेच सकते हैं। यद्यपि, राजस्थान कानून में शुरू में, विधेयक पेश करने के बाद भूमि अंतरणों की उपेक्षा करने का प्राविधान किया गया था, लेकिन बाद में संशोधन करके भूमि अंतरणों को अनुमति दे दी गई थी। चाय, कॉफी, रबर आदि के बागानों, चीनी मिलों द्वारा संचालित गन्ने के खेतों व शैक्षणिक संस्थाओं, सहकारी फार्मों को भी छूट दी गई थी। छूट प्राप्त करने के लिये रातों-रात बगीचे रोप दिए गए और बहुत ही जल्दी में सहकारी फार्म स्थापित कर दिए गए।

19.2 बचावकारी प्रक्रियाओं, बहुत से राज्यों में भू-अभिलेखों के सही हालत में न होने, मुकदमेबाजी का सहारा लेने, राजस्व प्रशासन के निचले स्तर पर बड़े भू-स्वामियों के डर, भूमि सुधार को अधिक प्राथमिकता न देने और राजनीतिक तथा प्रशासनिक नेतृत्व द्वारा भी एकछत्र ध्यान न दिए जाने से इनका वह प्रत्यक्ष परिणाम नहीं हुआ जैसा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद जमींदारी उन्मूलन के संबंध में हुआ था। केवल लगभग दस लाख हैक्टेयर भूमि राज्य में पुराने सीलिंग कानूनों के अधीन निहित हुई और केवल उसकी आधी ही वितरित की गई।

19.3 तीसरी योजना में पहले बनाए गए कानूनों को लागू करने पर जोर देने के अलावा अधिकतम सीमा कानूनों के बारे में कोई नई सिफारिशें नहीं की गई थी।

19.4 चौथी योजना के मसौदे में व्यावहारिक तौर पर यह समस्या अनदेखी रही। तथापि, 1969 में हुए मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन में भूमि की अधिकतम सीमाओं को कम करने, भूमि अंतरणों की शर्तों को और अधिक कठोर बनाने तथा अपवंचन की स्थितियों सम्भावनाओं को कम करने की आवश्यकता को महसूस किया गया। आखिरकार जुलाई 1972 में मुख्य मंत्रियों ने निम्नलिखित मार्गनिर्देशों का निर्णय लिया :

क) सुनिश्चित सिंचाई वाली भूमि के लिये अधिकतम सीमाएं

1) एक वर्ष में दो फसलें देने योग्य = 10 से 18 एकड़
2) एक वर्ष में एक फसल देने योग्य = 27 एकड़
3) अन्य सभी प्रकार की भूमि = 54 एकड़

ख) लागू करने की इकाई – पति, पत्नी तथा छोटे

बच्चों वाला परिवार

1) 5 से अधिक सदस्यों के परिवार को एक अतिरिक्त इकाई की अनुमति देना, और
2) प्रत्येक बालिग लड़के को एक अलग इकाई मानना।

ग) 24 जनवरी, 1971 से पूर्वगामी प्रभाव से लागू करना।

घ) गन्ने के फार्मों के अलावा, छूट को जारी रखना लेकिन गन्ना मिलों की अनुसंधान और विकास के लिये 100 एकड़ की अनुमति देना।

ङ) फालतू भूमि के लिये देय मुआवजा बाजार कीमत से कम रखना।

तदनुसार 1973 और उसके बाद कानून बनाए गए।

20.1 मार्च 1987 तक उपरोक्त दो प्रकार के कानूनों के कार्यान्वयन के परिणाम निम्नलिखित रहे हैं :—

	लाख एकड़	फालतू घोषित क्षेत्र के संदर्भ में प्रतिशत
फालतू घोषित क्षेत्र	76.33	78 %
कब्जे में लिया गया क्षेत्र	59.53	78 %
वितरित क्षेत्र	44.32	58 %
फालतू घोषित लेकिन कब्जे में न लिया गया क्षेत्र	16.80	22 %
कब्जे में लिया गया लेकिन वितरित न किया गया क्षेत्र	15.21	20 %
फालतू घोषित लेकिन वितरित न किया गया क्षेत्र	32.01	42 %
वितरत न होने के कारण मुकदमों में अवरूद्ध क्षेत्र	14.09	18.5 %
सार्वजनिक प्रयोजनों के लिये हस्तांतरित/आरक्षित	4.38	5.7 %
कृषि के लिये अयोग्य	4.12	5.4 %
विभिन्न कारणों से अनुपलब्ध	6.66	8.7 %
वितरिण के लिये अनुपलब्ध कुल भूमि	29.33	38.4 %
वितरण के लिये अनुपलब्ध क्षेत्र (32.01-29.33)	2.68	3.5 %

20.2 20 वर्षों से अधिक समय के पश्चात भी 1950 तथा 1960 दशक के अधिकतम भूमि सीमा कानूनों के संबंध में 418 रिटर्न, 1973 और उसके बाद के संशोधित अधिकतम सीमा कानूनों के अंतर्गत 22394 रिटर्न राजस्व प्राधिकारियों के पास अभी तक अनिस्तारित अवशेष पड़े रहने का कोई औचित्य नहीं है।

20.3 विभिन्न न्यायालयों में पड़े मामलों की संख्या तो मालूम ही नहीं है।

20.4 उच्च न्यायालयों के बदले संविधान की धारा 323-बी के अंतर्गत भूमि सुधार ट्रिब्यूनल गठित करने के सुझाव को अधिकतर राज्यों ने स्वीकार नहीं किया है। तमिलनाडू व बिहार सरकारों ने कानून तो बना लिये हैं किन्तु अभी ट्रिब्यूनलों ने कार्य शुरू नहीं किया है।

21. कृषि आंकड़ों से यह पता चलता है कि अधिकतम सीमा कानूनों के दो दौर के बावजूद देश में भूमि जोतों का वितरण सही ढंग से नहीं हुआ है। 10 हैक्टेयर से अधिक की भूमि जोतें, हालांकि वे प्रचालन जोतों की 2.15% हैं, फिर भी उनके अधीन 1980-81 में 22.8% क्षेत्र था। खेती करने की प्रौद्योगिकी के वर्तमान स्तर की पृष्ठभूमि में यह संभव नहीं है कि इन बड़ी जोतों पर पारिवारिक श्रम द्वारा, विशेष रूप से उन राज्यों में जहां पट्टेदारी पर रोक है, अधिकाधिक खेती की जा रही है। या तो अधिकांश भूमि बिना खेती किए खाली रखी जाती है अथवा कम सघन खेती की जाती है।

22.1 बहुत से एशियाई देशों में विशेष रूप से जापान और दक्षिणी कोरिया, जिसमें पारिवारिक जोतें 5 हैक्टेयर से कम हैं, ने कृषि उत्पादन में तीव्र प्रगति की है। ऐसा कोई कारण नहीं कि भारत में अधिकतम सीमा को और कम क्यों नहीं कर सकते। इसलिए मई 1985 के राजस्व मंत्रियों के सम्मेलन में यह सुझाव दिया गया था कि अधिकतम सीमाओं को 1972 में सुझाई गई सीमाओं अर्थात् 7.28, 10.93 और 21.85 हैक्टेयर से कम करके क्रमशः 5, 7.5 और 12 हैक्टेयर कर दिया जाए।

22.2 हिमाचल प्रदेश, जम्मू तथा कश्मीर, मणिपुर, उड़ीसा, तमिलनाडु, सिक्किम, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल में सर्वोत्तम श्रेणी की भूमि की वर्तमान सीमाएं 5 हैक्टेयर के बराबर अथवा उससे कम हैं।

दूसरी श्रेणी के सम्बन्ध में असम, हिमाचल प्रदेश, केरल, मणिपुर, उड़ीसा, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल में वर्तमान सीमाएं 7.5 हैक्टेयर की सुझाई गई सीमा के बराबर

अथवा कम है जबकि असिंचित भूमि के लिये 12 हैक्टेयर के सुझाए गए स्तर की तुलना में असम, जम्मू तथा कश्मीर, केरल, मणिपुर, पश्चिम बंगाल तथा त्रिपुरा में वर्तमान सीमाएं कम अथवा बराबर हैं।

22.3 उत्तर प्रदेश को छोड़कर सीमाओं वाले अन्य राज्य/ केन्द्र शासित क्षेत्र अधिकतम सीमाओं को कम करने के इच्छुक प्रतीत नहीं होते हैं।

23. कृषि गणना के आंकड़ों के आधार पर अनुमानित अधिकतम सीमा और कतिपय अनुमानों के आधार पर सुझाई गई कम सीमा से 98.46 लाख हैक्टेयर फालतू भूमि घोषित होनी चाहिए किन्तु वास्तव में घोषित फालतू भूमि केवल 30.18 लाख हैक्टेयर है। अधिकतम सीमाओं को कम करने के अलावा, बालिग लड़के को परिवार में शामिल करके परिभाषा में पूर्व प्रभाव से संशोधन करने, धार्मिक संस्थानों के लिये छूट को समाप्त करने आदि के भी सुझाव दिए गए थे। इन सुझावों पर प्रतिक्रिया कुल मिलाकर कोई अच्छी नहीं रही है।

24. इसमें कोई सन्देह नहीं कि सिंचाई और भूमि विकास, उर्वरक प्रयोग, उन्नत किस्म के बीजों के विकास के कार्यक्रमों और विस्तार सेवाओं के कारण 1961 और 1981 के बीच कृषि उत्पादन दोगुने से भी अधिक हुआ है। इस वास्तविकता के बावजूद कि जनसंख्या दोगुनी हो गई है खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में अपेक्षाकृत सुधार हुआ है। ग्रामीण क्षेत्र में भी असाधारण प्रगति हुई है लेकिन अहम सवाल तो यह है कि किसको लाभ पहुंचाया गया है। स्वाभाविक है जिनके पास भूमि थी, उन्हें कृषि विकास से लाभ हुआ है। जिनके पास अधिक भूमि थी उन्हें अधिक लाभ हुआ है और जिनके पास कम भूमि थी उन्हें कम लाभ हुआ है और जिनके पास अपनी भूमि नहीं थी उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ।

25. भूमिहीन गरीबों में अधिकतम सीमा से फालतू भूमि सहित सरकारी भूमि के वितरण के बावजूद कृषि श्रमिकों की संख्या (जिनके पास थोड़ी अथवा कोई भूमि नहीं है) बढ़ी है। 1961-81 के बीच कृषि श्रमिकों की संख्या दोगुनी हो गई है।

26. हालांकि यह महसूस किया गया था कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सफलता के लिये भूमि सुधार उपायों का प्रभावशाली कार्यान्वयन अनिवार्य है फिर भी दोनों का कार्यान्वयन अलग-अलग होता रहा है। तथापि इस कथन से कि गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम का मुख्य कार्य उनके लिये जिनके पास परिसम्पतियां कम है अथवा नहीं हैं, आय सृजित करने वाली पसिम्पत्तियाँ बढ़ाना है, सातवीं पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधार को नई दिशा दी गई है। इसलिए पुनर्वितरण योग्य भूमि सुधार तथा अनौपचारिक काश्तकारों को काश्तकारी की सुरक्षा के कार्य को सीधे तौर पर गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के साथ समन्वित किया जाना आवश्यक है।

27. ग्रामीण जनसंख्या के विभिन्न वर्गों पर विकास प्रक्रिया का अलग-अलग प्रभाव हुआ है। इससे पहले से अच्छी गुजर कर रहे और मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों को ग्रामीण गरीबों की तुलना में कहीं अधिक लाभ पहुंचा है। इसके फलस्वरूप बड़े पैमाने पर मोहवृत्ति और असंतोष फैला है। देहात में अन्तः क्षोभ की लहर-सी फैल रही है। देहात के कुछ भागों में व्यापक हिंसा और अराजकता इस अन्तः क्षोभ का महत्वपूर्ण सूचक है। वर्ग विरोध की भावना फैलाने वाले इन लक्षणों का समाधान केवल अधिक सड़कें, अधिक पुलिस स्टेशन बनाने से नहीं हो सकता बल्कि इसके लिये प्रभावशाली विश्वासपात्र और भूमि सुधार उपायों के तीव्र कार्यान्वयन की आवश्यकता है। अधिकांश अनुसंधानकर्त्ता इस बात से सहमत हैं कि पंचायतीराज संस्थाएं ग्रामीण गरीबों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती हैं। पंचायतें सम्पन्न लोगों द्वारा चलाई जाती है न कि गरीबों द्वारा। समितियों का वर्तमान ढांचा कमजोर वर्ग की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये काफी नहीं है।

28. जैसा कि उपरोक्त पैरा 26 में बताया गया है, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लिये किसी न किसी प्रकार का भूमि आधार अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में भी भूमि-सुधार कानूनों ने जिस भूमि पर गरीब व्यक्तियों ने झोपड़ियां डाल रखी थी उन्हें नियमित करने में काफी कुछ किया है। केरल और महाराष्ट्र आदि में काफी अच्छा कार्य हुआ है। सातवीं योजना अवधि के दौरान अभी तक विभिन्न राज्यों में भूमिहीनों को 54.43 लाख आवास-स्थल आबंटित किए गए हैं।

29. जहां कहीं चकबन्दी योजना सही तरीके से अमल में लाई गई हैं, वहां भूमि का बेहतर प्रबन्ध हो सका है और परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में भारी वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त इससे गांवों में सामुदायिक सुविधाओं की बेहतर योजना भी बन सकी है। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और

कुछ अन्य राज्यों में भी चकबन्दी योजना लगभग पूरी हो चुकी है। फिर भी बहुत से राज्यों में अभी तक पूर्ण चकबन्दी की व्यवस्था नहीं है, जबकि राजस्थान और जम्मू और कश्मीर जैसे कुछ राज्यों ने इस कार्य को स्थगित कर रखा है। दस वर्षों में चकबन्दी के कार्य को पूरा करने में छठी पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य को पूरा करना संभव नहीं प्रतीत होता है। पांचवीं योजना के अन्त तक, देश में 467.50 लाख हैक्टेयर कृषि योग्य क्षेत्र की चकबन्दी की गई थी। छठी योजना के दौरान 64.75 लाख हैक्टेयर और 1985-86 के दौरान केवल 12.41 लाख हैक्टेयर भूमि की चकबन्दी की गई। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भूमि के हर टुकड़े की चकबन्दी नहीं की जा सकती है लेकिन अभी तक देश में अनुमानित चकबन्दी क्षेत्र की भी चकबन्दी नहीं की जा सकी है। वास्तव में यह सही है कि इसके लिये कुछ राज्यों में भूमि के अद्यतन अभिलेखों का उपलब्ध न होना भी उत्तरदायी हैं क्योंकि चकबन्दी के लिये भूमि के अद्यतन अभिलेखों का होना अनिवार्य है। □

क्रमशः

ग्रामीण विकास के लिए और अधिक निवेश

ग्रामीण विकास विभाग द्वारा की गई समीक्षा से पता चलता है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम पर (आई.आर.डी.पी.) वर्ष 1986-87 में कुल 1567 करोड़ रुपये व्यय किये गये जो अब तक अधिकतम है। इसमें से 971 करोड़ रुपये की राशि बैंक द्वारा ऋण के रूप में दी गई।

ग्रामीण विकास राज्यमंत्री श्री रामानन्द यादव द्वारा की गई समीक्षा से यह भी पता चलता है कि 35 लाख परिवारों का लक्ष्य होने के बावजूद भी इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 38.34 लाख परिवारों की सहायता की गई। इनमें से 44.66 प्रतिशत अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के थे।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.), ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी.)तथा ग्रामीण जल पूर्ति जैसे प्रमुख ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लिए पहली किश्त के रूप में ग्रामीण विकास विभाग द्वारा अप्रैल 1987 में प्रथम तिमाही के शुरू में राज्यों को 674.20 करोड़ रुपये जारी किए गए।

रोजगार उत्पादन लक्ष्य से अधिक

वर्ष 1986-87 में रोजगार उत्पादन 38 करोड़ श्रम दिवस का रोजगार उत्पादन किया गया जबकि वर्ष का लक्ष्य 27 करोड़ 50 लाख श्रम दिवसों का था। यह उपलब्धि लक्ष्य का 138 प्रतिशत है। रोजगार के अवसरों से लाभान्वित होने वाले लोगों ने 33 प्रतिशत अनुसूचित जाति के 17 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के 30 प्रतिशत भूमिहीन व्यक्ति हैं तथा 17 प्रतिशत महिलाएं भी हैं।

ग्रामीण भूमिहीन रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1986-87 के दौरान लक्ष्य का 118 प्रतिशत प्राप्त किया गया और 28 करोड़ श्रम दिवस रोजगार पैदा किए गए जबकि लक्ष्य 23 करोड़ 60 लाख श्रम दिवसों का था।

इन्दिरा पुरस्कार योजना के अन्तर्गत ही लक्ष्य का लगभग 90 प्रतिशत प्राप्त किया गया। वर्ष 1986-87 के दौरान गांवों में रहने वाले गरीब लोगों को 90,517 एकड़ अतिरिक्त भूमि वितरित की गई जो कि निर्धारित लक्ष्य का 110 प्रतिशत था। □

राहत के लिए उठाए गए हैं आवश्यक कदम

हरि विश्नोई

इस बार देश के अधिकांश हिस्सों में पर्याप्त वर्षा न होने के कारण सूखे की स्थिति उत्पन्न हो गई है। फलस्वरूप खरीफ की फसल को नुकसान पहुंचा है। खासतौर पर धान, गन्ना और दलहन आदि की फसलें इस सूखे से प्रभावित हुई हैं। अकेले उत्तर प्रदेश में ही 35 करोड़ रुपये की फसल नष्ट हुई है।

भूमिगत जल स्तर नीचे खिसक रहा है। तालाब सूख रहे हैं। पानी की कमी ने इन्सान और जानवरों को समस्या से जूझने के लिए विवश कर दिया है। सूखे के इस संकट से नदियों के जल स्तर में भी कमी आई है। परिणामस्वरूप जल विद्युत के उत्पादन में कमी आना स्वाभाविक है।

गांवों में सूखे के कारण, पलायन, बेकारी और भुखमरी जैसी समस्या विकट रूप धारण करें, इससे पूर्व ही सरकार ने सूखे से राहत दिलाने के लिए कारगर कदम उठाने शुरू कर दिये हैं क्योंकि उन क्षेत्रों में सूखे की समस्या अधिक गंभीर हो गई है जहां सिंचाई के साधन कम हैं तथा खेती केवल वर्षा पर ही निर्भर रहती है।

केन्द्र द्वारा राज्यों की मदद

देश भर में सूखा राहत कार्यक्रम के लिए करीब 1600 करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है। राज्य सरकारों को 10 अक्तूबर 87 तक 470 करोड़ रुपया दिया जा चुका है। सूखे से प्रभावित राज्यों ने इस हेतु करीब 3400 करोड़ रुपयों की सहायता केन्द्र से मांगी है। सूखा प्रभावित क्षेत्रों में तत्काल राहत पहुंचाने के उद्देश्य से खाद्यान्न वितरण, पेयजल आपूर्ति तथा मवेशियों के लिए चारे की व्यवस्था की गई है। रोजगार के कार्यक्रम तथा लघु सिंचाई कार्यक्रम साधनों की वृद्धि पर विशेष बल दिया जा रहा है क्योंकि नहरें, नलकूप तथा पम्पिंग सैट ही सूखे की स्थिति से निबटने के लिए कृषकों की आशा-किरण बन गए हैं। सूखे की इस भयंकर स्थिति का मुकाबला करने के लिए किसानों को खुद भी व्यापक रूप से संगठित प्रयास करने होंगे। क्योंकि सरकार तो मदद ही कर सकती है। सूखा प्रभावित राज्यों में हर सम्भव कोशिश की जा रही है कि पीड़ितों को राहत मिले।

नियन्त्रण के लिए प्रभावी उपाय

सूखा पड़ने के कारण अभाव की स्थिति में जमाखोरी, कालाबाजारी तथा मूल्य वृद्धि रोकने के लिए सख्त कदम उठाए जा रहे हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत विक्रय व्यवस्था को और अधिक व्यापक बनाया गया है। अतः सूखा ग्रस्त क्षेत्रों में चीनी, खाद्यान्न और दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं को उपलब्धता उचित मूल्य पर बनी रहेगी। सरकारी भण्डार गृहों में 1.78 करोड़ टन गेहूँ तथा 74 लाख टन चावल उपलब्ध है। किन्तु फिर भी यदि आवश्यकता पड़ी तो खाद्यान्न की कमी न होने पाए इस उद्देश्य से सरकार खाद्यान्न आयात करने को भी तैयार है। हालांकि अनुमान है कि ऐसी स्थिति नहीं आएगी।

देश में रबी उत्पादन का लक्ष्य 7.6 करोड़ टन रखा गया है। उन्नतशील बीज तथा उर्वरक की पर्याप्त व्यवस्था इस हेतु की गई है। साथ ही साथ इनके विक्रय पर अनुदान देने की व्यवस्था भी है।

योजनाबद्ध कार्यक्रम

देश के किसी न किसी भाग में प्रति वर्ष सूखा पड़ता रहा है। इसी बात को मद्दे नजर रखते हुए बीस सूत्री कार्यक्रम में दूसरा सूत्र इसी समस्या से निबटने के लिए रखा गया है। जिसमें सूखे की सम्भावना कम करने, सूखा प्रवण और राहत कार्यक्रम को प्रभावी बनाने, जमीन की नमी बनाए रखने के लिए आवश्यक सुधार तथा जल संसाधनों की बेहतर व्यवस्था किए जाने का प्राविधान है। साथ ही साथ वर्षा पर निर्भर कृषि विकास के लिए उन्नत बीजों की

पम्पिंग सैट: सफल साधन

व्यवस्था का कार्य भी इस सूत्र के क्रियान्वयन में किया जाता है।

देश में वर्षा सिंचित भूमि पर खेती करने वाले किसानों को राहत पहुंचाने के उद्देश्य से 13 राज्यों में पहले ही 'सूखा ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम' चल रहा है ताकि फसल-हानि, चारे तथा पेयजल की कमी आदि से निपटा जा सके। 1982 में यह भी संस्तुति की गई कि सूखे के प्रभाव को कम करने के लिए निरन्तर प्रयास किए जाएं। जिनमें पर्यावरण, भूमि, पशुधन एवं मानव संसाधनों में संतुलन बनाए रखने के लिए कार्य किया जाए।

युद्ध स्तर पर क्रियान्वयन

सूखा ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम का उद्देश्य है जल स्रोतों का विकास करना, उनका उत्पादनकारी प्रयोग करना, कृषि एवं जलवायु सम्बन्धी परिस्थिति के आधार पर शुष्क भूमि खेती को बढ़ावा देना, भूमि में नमी संरक्षण के उपाय करना, जल एकत्रीकरण, वनरोपण, पशुधन तथा चारा स्रोतों के विकास सम्बन्धी क्रिया कलापों पर बल देना।

यह कार्यक्रम 5.36 लाख वर्ग कि.मी. में 70.75 लाख मिलियन जनसंख्या वाले 90 जिलों के 615 खण्डों में चल रहा है। यह कार्यक्रम केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के रूप में चल रहा है जिसमें केन्द्र और सम्बन्धित राज्य द्वारा आधा खर्च वहन किया जाता है। केन्द्र सरकार द्वारा इस हेतु सातवीं योजना के लिए 237 करोड़ रुपये का परिव्यय रखा गया है तथा निधियों के आबंटन को बढ़ा कर अब प्रति खण्ड 15 लाख रुपये तक कर दिया गया है।

वर्ष 85-86 में इस कार्यक्रम में 73.15 करोड़ रुपया व्यय किया गया। वर्ष 86-87 के दौरान 46 करोड़ रु. केन्द्र ने राज्यों को आबंटित किया है।

उत्तर प्रदेश में सूखा राहत

उत्तर प्रदेश सरकार को 10 अक्तूबर 87 तक केन्द्र से 141 करोड़ रु. प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त प्रदेश में राहत कार्य तेजी से चलाने के लिए अनेक कदम उठाए गए हैं। चारा बोने के लिए नहरों से की गई सिंचाई का शुल्क माफ कर दिया गया है। जल्दी पैदा होने वाले आलू की बुवाई के लिए खाद के दामों में कमी की गई है। पेयजल आपूर्ति हेतु 125 करोड़ रुपया खर्च किया जा रहा है। 12 करोड़ रुपये की खरीफ फसल की वसूली माफ कर दी गई है। सहकारी संस्थाओं द्वारा दिए गए ऋणों की वसूली अक्तूबर 88 तक रोक दी गई है जो बाद में पुनर्निर्धारित किश्तों में की जाएगी। सूखा राहत हेतु प्रत्येक जिले को 75 लाख रुपये

दिए गए हैं। काम के बदले अनाज योजना में सड़क निर्माण, नहरों की खुदाई, बंधिया बनाकर पानी एकत्र करने आदि के कार्यों में मजदूरों तथा छोटे किसानों को काम दिया गया है। प्रत्येक विकास खण्ड में सिंचाई समिति बनाई जाएगी जो प्रति माह, अपने क्षेत्र की नहरों तथा नलकूपों की सेवा बेहतर बनाने के बारे में सुझाव देगी। इसमें दस सदस्य होंगे। इसके अतिरिक्त हैण्ड पम्प लगा कर, कुएं खोद कर, नहरों से तालाब भरने की आवश्यकता है। किसानों को पम्पिंग सैट के लिए तत्काल ऋण तथा डीजल आपूर्ति तथा कार्ड बनवाने की व्यवस्था की गई। नहरों में अधिकतम जलापूर्ति की जा रही है।

कैनाल पम्प सिंचाई फीडर की अधिकतम सुविधा उपलब्ध करायी जा रही है ताकि सिंचाई जल की कमी न हो। प्रदेश में गन्ना विकास विभाग ने गन्ना किसानों को राहत देने के लिए रियायती दर पर उधार खाद दिलाने तथा चीनी मिलों द्वारा खराब पम्पिंग सैट्स की मरम्मत मुफ्त कराने की व्यवस्था की है । इसी प्रकार सरकारी प्रयासों से उत्तर प्रदेश के अलावा पूरे देश में सूखे के प्रकोप से किसानों को काफी राहत मिली है क्योंकि सभी प्रभावित क्षेत्रों में सरकारी प्रयासों को बड़ी तेजी के साथ लागू किया गया।

(सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम में राज्यवार आबंटन वर्ष 86-87)

राज्य	जिलों की संख्या	खण्डों की संख्या	प्रति खण्ड 15 लाख रु. की दर से कुल आबंटन	लाख रुपये में प्रति खण्ड 7.5 लाख रुपये की दर से केन्द्रीय अंग
1	2	3	4	5
1. आन्ध्रप्रदेश	8	69	1035.00	517.5
2. बिहार	5	54	810.00	405.0
3. गुजरात	8	43	645.00	322.5
4. हरियाणा	1	9	135.00	67.5
5. जम्मू व कश्मीर	2	13	195.00	97.5
6. कर्नाटक	11	71	1065.00	532.5
7. मध्य प्रदेश	6	49	735.00	367.5
8. महाराष्ट्र	12	74	1110.00	555.0
9. उड़ीसा	4	39	585.00	292.5
10. राजस्थान	8	30	450.00	225.0
11. तमिलनाडु	6	43	645.00	322.5
12. उत्तर प्रदेश	16	87	1305.00	652.5
13. पश्चिम बंगाल	3	34	510.00	255.0
	90	615	9225.00	4612.50

(सूखा ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम की भौतिक उपलब्धियां)

क्रम	1985-86	1986-87 दिसम्बर, 86 तक
1. भूमि तथा नमी संरक्षण के अन्तर्गत सुधारा गया क्षेत्र (100)	682.79	340.58
2. सृजित सिंचाई संभाव्यता (00 हैक्टेयर)	454.01	387.40
3. वनरोपण और चरागाह विकास (00 हैक्टेयर)	522.98	417.93
4. सृजित रोजगार (000 श्रम दिवस)	232.17	10865.68
5. सहायता दिए गए परिवार (000 मिलियन)	1220.472	699.317

□

एच 88, शास्त्री नगर
मेरठ (उ.प्र.)

कृषि विकास के लिये महिला श्रमिकों को प्रशिक्षण

डा. (श्रीमती) ए. लक्ष्मी देवी

कृषि उत्पादन में महिला खेतिहर श्रमिकों की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण होती है। अनेक अध्ययनों से पता चलता है कि "विकासशील देशों में स्त्रियों पर विकास प्रक्रिया पर प्रतिकूल असर पड़ता है। उन पर काम का बोझ बढ़ जाता है, लेकिन उनके काम का दर्जा कम हो जाता है, गरीब ग्रामीण स्त्रियों को परिवारं के भरण-पोषण में कठिनाई बढ़ जाती है और फलतः परिवार कुपोषण का शिकार होता है। विकास प्रकिया के बावजूद अनेक खेतिहर स्त्रियां कृषि की आधुनिक तकनीकों से वंचित रहती हैं जिनसे उनके दैनिक जीवन में समस्याएं बढ़ जाती हैं। जैसा कि जेरमाइन (1976) ने कहा है विकास आयोजक स्त्रियों को उत्पादक नहीं बल्कि पुनुत्पादक मानते हैं।

भारत में भी उन्नत किस्म के बीजों, सिंचाई, कृषि-यंत्रों तथा रसायनों का उपयोग बढ़ने के साथ-साथ कृषि क्षेत्र में स्त्रियों की हैसियत कम होती गयी है। आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि 1961 में महिला किसानों की संख्या 56% थी लेकिन यह घटकर 1971 में 30% तथा 1981 में 24% रह गयी । इसी अवधि में खेतिहर महिला श्रमिकों की संख्या बढ़कर क्रमशः 24%, 50% तथा 58% हो गयी।

कृषि में स्त्रियों का योगदान

भारत में लगभग 70% श्रमिक पुरुष तथा 87% श्रमिक स्त्रियां अपने भरण-पोषण के लिये कृषि, पशुपालन, वानिकी आदि पर निर्भर हैं। अनेक कृषि कार्यों में स्त्रियां पुरुषों का हाथ बंटाती हैं। खाद डालना, जमीन तैयार करना, बीज छांटना, बुआई, पौध रोपण, सिंचाई, कटाई, चारे की कटाई, अनाज को अलग करना, छंटाई, अनाज का भंडारण, पशुओं को चारा, दूध निकालना, मुर्गी पालन, सब्जियां उगाने जैसे काम मुख्यतः स्त्रियां ही करती हैं।

कृषि कार्यों में सबसे अधिक योगदान आदिवासी स्त्रियां करती हैं उनके बाद यह काम सबसे अधिक अनुसूचित जातियों की स्त्रियां करती हैं जबकि समाज में दर्जा बढ़ते जाने से स्त्रियों की भागीदारी कम होती जाती है।

प्रशिक्षण की आवश्यकता

कृषि विकास कार्य में स्त्रियों की भागीदारी के महत्व को देखते हुये उन्हें कारगर प्रशिक्षण देने की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है।

देश के अनेक भागों में विश्व बैंक की सहायता से जो प्रशिक्षण व्यवस्था चलायी जा रही है उसके अंतर्गत पुरुष किसानों को ज्ञान तथा प्रशिक्षण दिया जाता है। स्त्रियों को जो कि कृषि उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती हैं इस कार्यक्रम के अंतर्गत कोई खास प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। इनके लिये फसल उत्पादन प्रौद्योगिकी के विभिन्न पहलुओं के बारे में अलग से प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता है। लेखिका ने चार वर्ष पहले आंध्र प्रदेश में अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि कृषि कार्यों में लगी स्त्रियों को कई तरह से प्रशिक्षण दिया जा सकता है। घर के मामले में उन्हें परिवार की आम पौष्टिक आहार की आवश्यकता, स्वच्छता, बालकल्याण, परिवार के खर्च का हिसाब-किताब, फल व सब्जी संरक्षण जैसे कामों के बारे में प्रशिक्षण दिया जा सकता है। कृषि संबंधी कार्यों में उन्हें नये पशु खरीदने, उनकी देखभाल, मुर्गी पालन, खाद बनाना, वानिकी, मधुमक्खी और रेशम के कीड़े पालना, बीजों का चयन, बुआई के तरीके, कृषि उपकरणों के लिये ऋण, फसल के कीड़ों और बीमारियों की जानकारी, उर्वरकों की पहचान और उपयोग, अनाज की सफाई, छंटाई, भंडारण, कृषि उत्पादनों की बिक्री आदि कामों का समुचित प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है।

किसान प्रशिक्षण

संस्थागत तौर पर किसान स्त्रियों का प्रशिक्षण भारत

में 1966-67 में उस समय आरंभ हुआ जब केन्द्र द्वारा प्रायोजित किसान प्रशिक्षण व शिक्षा कार्यक्रम प्रयोग के तौर पर पांच जिलों में आरंभ किया गया। ये थे — अकोला (महाराष्ट्र), कोयंबतूर (तमिलनाडु), रायत्तूर (मैसूर), लुधियाना (पंजाब), लखनऊ (उ.प्र.)। चौथी पंचवर्षीय योजना में यह कार्यक्रम 100 नये जिलों तथा पांचवीं योजना में 150 नये जिलों में लागू किया गया। इसके अंतर्गत ग्रामीण स्त्रियों को तकनीकी ज्ञान देकर उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले सामान के बेहतर उपयोग की जानकारी दी जाती है। बाद में यह योजना राज्य सरकारों को सौंप दी गयी। इस कार्यक्रम के अंतर्गत आंध्र प्रदेश में तीन तरह का प्रशिक्षण दिया जाता है — (1) किसानों के लिये संस्थागत प्रशिक्षण और विचार गोष्ठियां (2) फार्म प्रसारण तथा चर्चाएं (3) खेतों में प्रदर्शन कार्यक्रम।

संस्थागत प्रशिक्षण

किसान प्रशिक्षण केंद्रों में विशेष विषयों पर प्रशिक्षण 3 से 5 दिन तक का होता है। पुरुषों व स्त्रियों को पृथक प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रत्येक बार करीब 25 लोगों को प्रशिक्षण दिया जाता है। स्त्रियों को पौष्टिक आहार, पशुओं की देखभाल, अनाज भंडारण, बीजों का चयन, उर्वरकों और कीटनाशकों का रख-रखाव आदि कामों की जानकारी दी जाती है। पुरुषों को फसलों के बारे में बताया जाता है। कृषि उपकरणों के बारे में भी बताया जाता है।

किसान चर्चामंडलों के संयोजकों के लिये तीन दिन का विशेष कार्यक्रम भी चलाया जाता है जिसमें उन्हें नेतृत्व के गुणों का विकास, नेतृत्व की भूमिका, चर्चाएं आयोजित करने के संबंध में जानकारी दी जाती है।

फार्म प्रसारण

किसान शिक्षा कार्यक्रम में आकाशवाणी से उन्नत किस्म के बीजों तथा अन्य कृषि कार्यक्रमों के बारे में जानकारी उपलब्ध करायी जाती है। आवश्यकता पड़ने पर कीड़ों और बीमारियों से फसल की रक्षा के बारे में भी समस्याओं की जानकारी दी जाती है।

किसान प्रशिक्षण कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अंग था — चर्चामंडलों की स्थापना। चुने हुये जिलों में पुरुषों व स्त्रियों के लिये अलग-अलग चर्चामंडल स्थापित किये जाते थे। प्रत्येक चर्चामंडल को ट्रांजिस्टर-रेडियो, निशुल्क कृषि साहित्य तथा कागज व डाक खर्च के लिये प्रति माह पांच रुपये दिये जाते हैं। जिले में प्रत्येक श्रेष्ठ काम करने वाले चर्चामंडल को पुरस्कार भी दिया जाता है।

प्रत्येक जिले में आमतौर पर विशेषज्ञों को सभी प्रमुख फसलों के बारे में 15 राष्ट्रीय प्रदर्शन कार्यक्रम चलाने होते हैं। राज्य सरकारें, सप्लायर और स्वयंसेवी संगठन भी वैज्ञानिक प्रदर्शन कार्यक्रम आयोजित करते हैं।

खुसपे (1970) द्वारा किये गये अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि प्रशिक्षण से किसानों को ज्ञान मिलने से उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। उत्तर प्रदेश के पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय के एक अध्ययन से पता चलता है कि इस प्रशिक्षण कार्यक्रम में अनपढ़ किसान, वृद्ध किसान शामिल हुये।

इस कार्यक्रम संबंधी समस्याओं का राव (1969) ने अध्ययन करके निष्कर्ष निकाला कि अनिच्छुक किसानों को कार्यक्रम के लिये चुनने, कृषि के लिये सामान की कम सप्लाई, ढुलाई तथा अपर्याप्त प्रशिक्षण अनुभव कुछ मुख्य समस्यायें हैं।

बिहार में (सिंह 1967) एक अध्ययन से पता चलता है कि वहां प्रशिक्षकों का मत था कि प्रशिक्षण कार्यक्रम के विषय तथा इस की अवधि में परिवर्तन की आवश्यकता है।

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के सोहल तथा सिंह (1968) के अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि कार्यक्रम में लेक्चर की जगह प्रदर्शन कार्यक्रमों पर अधिक जोर दिया जाना चाहिये।

इस कार्यक्रम के बारे में एक अन्य अध्ययन 1978 में कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन द्वारा 15 राज्यों में किया गया और यह निष्कर्ष निकला कि किसानों को शिक्षा का मामूली असर पड़ा है। किसानों ने विभिन्न सुझावों को नाममात्र के लिये अपनाया।

कृषि और सिंचाई मंत्रालय ने इस कार्यक्रम के अध्ययन में निम्नलिखित बाते कहीं :—

किसान प्रशिक्षण केन्द्रों से किसानों को उन्नत किस्म के बीजों, उर्वरक, खेती के तरीकों आदि के बारे में निश्चित रूप से अधिक जानकारी मिली है। स्त्रियों को गेंहू तथा धान के बारे में अधिक ज्ञान हुआ है।

कुछ कमियां भी इस कार्यक्रम में देखने में आयी हैं। कई प्रशिक्षण केंद्रों में प्रशिक्षक व तकनीकी कर्मचारी पर्याप्त संख्या में नहीं हैं। प्रशिक्षण के लिये किसानों, स्त्रियों का चयन ठीक नहीं था। सम्पर्क तथा समन्वय का अभाव

रहा। प्रशिक्षण कार्यक्रम के विषय किसानों की आवश्यकता के अनुरूप नहीं थे क्योंकि इन्हें स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नहीं तय किया गया। प्रशिक्षण के बाद किसानों को तकनीकी प्रशिक्षण तथा सेवा की तरफ ध्यान नहीं दिया गया और बाद की नवीन जानकारी से वे वंचित रह गये। व्यावहारिक ज्ञान तथा जानकारी पर्याप्त नहीं दी गयी।

सुधार के लिये सुझाव

उपरोक्त कमियों और कार्यकलापों के आधार पर निम्नलिखित सुझावों पर विचार किया जा सकता है:—

स्त्रियों के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रम उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप होने चाहिये और उन्हें प्रशिक्षण ऐसा देना चाहिये कि कृषि कार्यों में उनका योगदान बढ़े। उन्हें प्रशिक्षण केवल ज्ञानवर्द्धन के लिये नहीं बल्कि उनकी कार्यकुशलता बढ़ाने के लिये देना चाहिये। प्रशिक्षण कार्यक्रमों की अवधि इतनी होनी चाहिये कि स्त्रियां उन्हें कुशलता से व्यवहार में लाने योग्य बन सकें। कार्यक्रम में स्त्रियों की उपस्थिति नियमित नहीं रह पाती। इस बारे में पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है। इन कार्यक्रमों के चयन के लिए स्त्रियों का 31 आयु वर्ग अगर 15-45 के बीच हो तो बेहतर है क्योंकि लगभग वही आयु वर्ग होने से आपसी सम्पर्क प्रभावी रहता है। स्त्रियों के चयन में निरक्षरता आड़े नहीं आनी चाहिये तथा उन्हें व्यावहारिक कार्यक्रम, प्रदर्शन आदि के जरिये कार्यकुशल बनाया जाये। उन्हें चर्चामंडलों में भी भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया जाये। फिल्मों आदि का उपयोग भी कार्यक्रम में पर्याप्त होना चाहिये। इन कार्यक्रमों में कृषि के अलावा मुर्गीपालन, डेयरी आदि के बारे में भी समुचित जानकारी दी जानी चाहिये। सम्बद्ध विभागों जैसे पशुपालन, रेशम, बागवानी, कृषि इंजीनियरी आदि को इस कार्यक्रम से सक्रिय रूप से जोड़ना चाहिये ताकि ये किसान पुरुष, स्त्रियों को नवीनतम तथा प्रामाणित जानकारी उपलब्ध करा सकें। कमजोर वर्गों के पुरुषों, स्त्रियों को कार्यक्रम के लिये प्राथमिकता दी जानी चाहिये। स्थानीय स्वयंसेवी संस्थाओं का सक्रिय सहयोग लिया जाना चाहिये। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा किसान प्रशिक्षण केन्द्रों के काम का सावधिक मूल्यांकन होना चाहिये और इसके अनुरूप वांछित उपाय तथा सुधार अनिवार्य रूप से अविलंब होने चाहिये। □

अनुवाद : ओम प्रकाश दत्त

विकसित गांव

सन्तोष नारंग

उषा की मधुरिम वेला
जन्माती है पक्षियों की एक पंक्ति
दिन आवारा चुगा
और खलिहान, उपवन, नदियां पहाड़
पक्षियों के जीवन कलरव हैं
कितनी सुन्दर लगती है -सन्ध्या
गावं की गोधूलि के संग
लौटती है पंक्ति, जब अपने घर
अपने गांव
और तब रात लोकधुन
गुनगुनाने लगती है
एक विकसित आदिवासी गांव
नाचने लगता है
आकाश पर।

एकीकृत ग्रामीण विकास : अवधारणा, अभिप्राय एवं उद्देश्य

प्रो. आर.आर. यादव
महेन्द्र राम

विगत एक दशक से नियोजन, ग्राह्य जनसमूह एवं शैक्षिक परिवेश में "एकीकृत ग्राम्य विकास" का प्रयोग एक फैशन हो गया है। परन्तु अधिकांश ग्राह्य-जनसमूह एकीकृत ग्राम्य विकास अवधारणा से अनभिज्ञ हैं। जबकि उपागम की सफलता उसकी अभीष्ट जानकारी, सही क्रियान्वयन, कालिक मूल्यांकन एवं निर्दिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में निहित है। प्राथमिकता की दृष्टि से सम्प्रति संकल्पना की "पृष्ठभूमि", "ग्रामीण परिवेश", "विकास" एवं "एकीकृत विकास" की सम्यक जानकारी समीचीन है।

कृषि भारतीय अर्थ तंत्र का मेरुदण्ड एवं 80 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या के जीविकोपार्जन का मुख्य साधन है तथा देश के सर्वतोमुखी भावी विकास के लिए ग्रामीण निवास्य का सर्वांगीण विकास अति आवश्यक है, जिसकी अनुभूति राष्ट्रपिता बापू को थी। उनका "आत्म निर्भरता ग्रामीण विकास आन्दोलन" इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। जिसके आधार पर उन्हें ग्रामीण विकास कार्यक्रम का जन्मदाता कहा जाता है। वे गांवों के पुनरुद्धार व आर्थिक विषमता दूर करने के पक्षधर थे। सन् 1920 में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "शान्ति निकेतन" का ग्रामीण विकास की दिशा में प्रयास व अनुभव, 1928 में स्पैन्सर हैच का महाराष्ट्र के 40 गांवों के विकास कार्यक्रम, 1933 में टी. कृष्णामाचारी का बड़ौदा स्टेट कार्यक्रम तथा 1934-46 के बीच उ.प्र., बिहार, मद्रास सरकार के ग्रामीण विकास कार्यक्रम, स्वतंत्रतोपरान्त सन्त विनोबा भावे का "भू-दान" कार्यक्रम सम्प्रति अवधारणा की पृष्ठभूमि से जुड़े हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण क्षेत्रों के बहुआयामी विकास हेतु विभिन्न सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को कार्यान्वित किया गया। परन्तु विगत तीन दशकों के ग्राम्य विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में समन्वय की कमी, अनियमिततापूर्ण रीति से क्षेत्रों, वर्गों तथा व्यक्तियों के चयन, निर्धन एवं कमजोर वर्गों की अनभिज्ञता, उदासीनता एवं सहभागिता की कमी तथा सबल वर्गों के हस्तक्षेप से सामाजिक, आर्थिक एवं क्षेत्रीय विषमता दूर न की जा सकी। परिणामस्वरूप सन् 1976 में "एकीकृत ग्रामीण विकास अवधारणा" का उद्भव हुआ। जिसका श्रेय तत्कालीन केन्द्रीय वित्तमंत्री श्री सुब्रह्मण्यम् को है। सम्प्रत्ति नियोजन प्रक्रिया का मुख्य लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों के बहुआयामी विकास हेतु भू-वैज्ञानिक संगठन के निर्माण में स्थानीय प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों के अनुकूलतम दोहन, अवस्थापना तत्वों के सर्वांगीण विकास एवं पारिस्थितिकी सन्तुलन का समन्वयन है।

ग्रामीण विकास अवधारणा

ग्रामीण परिवेश का अभिप्राय ऐसे क्षेत्र से है जिसका प्राकृतिक वातावरण भू-वैज्ञानिकी, व्यवसाय, कार्य पद्धति, सामाजिक संगठन, जीवन पद्धति एवं अधिवास प्रतिरूप नगरीय स्वरूपों से भिन्न होता है। "ग्राम" एवं "पुरवा" ग्रामीण क्षेत्र के अधिवास हैं। जिसका मुख्य उद्यम कृषि, बागाती कृषि, पशुपालन, पशुचारण, आखेट एवं उनसे संबंधित अन्य कार्यकलाप हैं। जिसका निवास्य अपने प्राकृतिक पर्यावरण में कार्यात्मकता की दृष्टि से सरल, सहज एवं धीमी दैनिक गतिविधि रखता है तथा कुछ निश्चित अवसरों के अलावा शेष समय बेरोजगार रहकर सामाजिक दृष्टि से अन्योन्याश्रित तथा सामुदायिक जीवन व्यतीत करता है। इस परिवेश में 2 हैक्टेयर से कम जोत रखने वाले 65 प्रतिशत से अधिक काश्तकारों के पास कृषि योग्य भूमि का मात्र 19 प्रतिशत भाग है तथा 23 प्रतिशत काश्तकारों के पास कृषि योग्य भूमि का लगभग 41 प्रतिशत भाग है जबकि मात्र 8

प्रतिशत काश्तकारों के पास कृषियोग्य भूमि का 40 प्रतिशत से अधिक भाग है।

एग्रीकल्चरल सेन्सस 1976-77 के अनुसार भारत में उच्चवर्गीय कृषकों का 1 प्रतिशत भाग उतनी जमीन रखता है जितनी 15 प्रतिशत कृषक रखता है। रिजर्व बैंक के डेट एण्ड इनवेस्टमेण्ट सर्वेक्षण के अनुसार 1 प्रतिशत उच्चवर्गीय ग्रामीणों की सम्पत्ति, 60 प्रतिशत निम्नवर्गीय ग्रामीणों की सम्पत्ति से अधिक है। इससे स्पष्ट है कि देश के लगभग 35 करोड़ हैक्टेयर कृषि योग्य भूमि के एक बड़े हिस्से पर बड़े काश्तकारों का कब्जा है जिनकी कृषि-श्रम में विशेष अभिरुचि नहीं है तथा देश में कृषि-भूमि का असमान वितरण दुर्भाग्यपूर्ण एवं गरीबों के शोषण का कारण है। यद्यपि ग्रामीण परिवेश प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण है तथा इसमें सर्वांगीण विकास की सम्भावनाएं निहित हैं।

विकास विभिन्न सेवाओं एवं सुविधाओं में परिणामात्मक तथा गुणात्मक परिवर्तन है जो नियत समय में धनात्मक वस्तुनिष्ठ दृष्टि से मात्रात्मक एवं गुणात्मक हो। यदि परिवर्तन वांछित गुण-मात्रा से परे है तो वह ऋणात्मक अथवा असंतुलित विकास कहा जायेगा। विकास का मूलमंत्र गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक-विषमता एवं ग्रामीण-नगरीय अन्तर को दूर करते हुए परम्परागत समाज को गत्यात्मक स्वरूप प्रदान करना है जिसमें श्रम का विकेन्द्रीकरण, विशिष्टीकरण एवं विभिन्न कार्यों, व्यक्तियों, समूहों, वर्गों व संगठनों में परस्पर सम्बन्ध हो तथा विकास-प्रक्रिया में ही सामाजिक न्याय एवं दक्षता, रोजगार के सुअवसर, आय का संरक्षण, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, आवास, मानव-कल्याण, पर्यावरण सुरक्षा आदि की व्यवस्था हो। वर्तमान में इसका मुख्य उद्देश्य उस पर्यावरण का सुधार करना है जिसमें जरूरतमंद गरीब रहते हैं।

''ग्रामीण विकास'' का संबंध ग्रामीण अर्थतंत्र के बहुमुखी विकास से है। यह मात्र कृषि विकास से सम्बन्धित नहीं है, बल्कि कृषि एवं कृष्येतर क्रियाकलापों तथा अवस्थापना तत्वों के विकास से है, क्योंकि अधिकांश ग्रामीण निवास्य खेतिहर मजदूर, बंधुआ मजदूर, दस्तकार, भूमिहीन, आवासहीन, अन्नहीन, बड़े भू-स्वामियों की इच्छा एवं दया पर निर्भर, शोषित मजदूर हैं। इसलिए ग्रामीण विकास का तात्पर्य सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, बौद्धिक, राजनैतिक एवं आर्थिक क्रांति से है, जिसमें अहिंसात्मक ढंग से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्राविधियों का समावेश करके ग्रामीण विकास के विविध आयामों में उन्नतोन्मुख परिवर्तन लाकर सभी ग्रामीणों को जीने-रहने, भोजन, कपड़ा, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा व पोषण एवं उन्नति करने के संसाधन सुलभ कराये जा सकें। विकास की इस प्रक्रिया में पारिस्थितिकी-असंतुलन एवं पर्यावरण प्रदूषण से बचाव उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि स्वयं विकास। क्योंकि संसाधनों का संतुलित दोहन व उनकी अनन्तकालिक सुलभता एवं प्रदूषणरहित स्वच्छ एवं सुन्दर पर्यावरण उपलब्ध कराना विकास का ही पहलू है। इस परिप्रेक्ष्य में यह भी विचारणीय है कि पर्यावरण-प्रदूषण के नाम पर पर्यावरण-प्रदूषण का प्रचार विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के विकास को अवरुद्ध करने का ''स्लोगन'' मात्र है, जबकि पर्यावरण एवं विकास एक दूसरे के पूरक हैं।

अभिप्राय एवं उद्देश्य

35 वर्षों के नियोजित विकास प्रयास के अन्तराल में गरीबी उन्मूलन का वांछित लक्ष्य प्राप्त न हो सका तथा आर्थिक विषमता एवं बेरोजगारी की समस्या बनी रही। यद्यपि विकास कार्यक्रमों एवं प्रयासों का सुप्रभाव भारतीय अर्थतंत्र तथा सामाजिक सांस्कृतिक एवं शैक्षिक परिवेश में दृष्टिगत होता है, क्योंकि औद्योगिकीकरण की दृष्टि से भारत का विश्व में ऊपर से 9 वां स्थान है। सरकार की निर्दिष्ट नीतियों-राष्ट्रीय एकीकरण एवं नियोजित विकास का अनुगमन एवं नये 20 सूत्री कार्यक्रम को साकार रूप देने हेतु नियोजकों ने वर्तमान समय में ''बहुस्तरीय नियोजना प्रक्रिया'' के अन्तर्गत पुरानी समस्याओं के निराकरण हेतु नूतन अवधारणा — ''समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम'' प्रस्तुत किया है।

इस संकल्पना का अभिप्राय बहुआयामी ग्रामीण क्षेत्रों का सर्वांगीण विकास है। सम्प्रति संकल्पना का लक्ष्य बहुस्तरीय (ग्राम, ब्लाक, जनपद, राज्य व राष्ट्र) बहुवर्गीय (विभिन्न समुदाय-लघु, सीमान्त कृषक, भूमिहीन, खेतिहर मजदूर, मजदूर, दस्तकार, अनुसूचित जाति एवं अन्य मध्यम व प्रभावी व्यक्ति), बहुधन्धी (अर्थ-तंत्र के तीनों प्रखण्डों-कृषि, उद्योग, व्यापार, यातायात, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं अन्य सेवाएं) विकास परियोजनाओं से विकेन्द्रीकरण के साथ समन्वय स्थापित करते हुए कालिक एवं क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय समस्याओं का निराकरण करना भी है। इस नूतन संस्थान के सफल कार्यान्वयन में ''मूलभूत आवश्यकता कार्यक्रम'' (भोजन, कपड़ा, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पोषण का प्रबंध) ''क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम'' (भू-वैन्यासिकी नियोजन के अन्तर्गत क्षेत्र विशेष में उपलब्ध संसाधनों के आधार पर उसके भावी विकास हेतु एक समन्वित

योजना-प्रारूप तैयार करना, जो क्षेत्र के सर्वांगीण विकास में सहायक हो) "विकास केन्द्र उपागम" (द्वितीयक एवं तृतीयक सेवाओं को ग्राम्य अंचलों में प्रदान कर ग्राम-नगर विभेद को दूर करना,) को आधारस्वरूप स्वीकार किया गया है। समन्वित ग्रामीण विकास उपागम का उद्देश्य नीचे से ऊपर चलकर विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समूहों के बीच विषमता दूर करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्थानीय प्राकृतिक-मानवीय संसाधनों का अनुकूलतम दोहन करके रोजगार की सुविधा सुलभ कराना तथा गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों के जीवन-स्तर में अभिवृद्धि करना है।

"समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम" का उद्देश्य उत्पादकता में अभिवृद्धि, रोजगार की सुविधा सुलभ कराना, आय का समान वितरण, आर्थिक विषमता दूर करना, कृषि को व्यापारिक स्वरूप देना, कृष्येतर क्रियाकलापों में अभिवृद्धि, ग्रामीण-नागरीय अर्थतंत्र में समन्वय, स्थानीय संसाधनों के आधार पर कुटीर एवं लघु उद्योगों का तीव्र विकास, यातायात, संचार एवं विपणन, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार-कल्याण, सचल चिकित्सा व्यवस्था, मनोरंजन केन्द्रों की व्यवस्था, कृषकों की मौसमी बेरोजगारी को दूर करना, मानव-संसाधनों में गुणात्मक वृद्धि करना, भूमि सुधार, बाढ़ व सूखा नियंत्रण, भूमि-संरक्षण, जल-प्रबंध, वृक्षारोपण, भूमि उपयोग में वैज्ञानिक प्राविधियों, उर्वरक तथा बीज की नयी प्रजातियों के प्रयोग हेतु प्रशिक्षण, दुग्ध-पशुपालन, भेड़ एवं बकरी पालन, कुक्कुट पालन, सुअर पालन की व्यवस्था, कृषि तकनीकों को कृषकों तक पहुंचाना, प्रसार एवं प्रचार करना, गोबर गैस, बायो गैस, विकास चूल्हा-ऊर्जा पैदा करना, बंधुआ मजदूर मुक्ति, बाल मजदूर उद्धार, न्यूनतम मजदूरी निर्धारण, विद्युतीकरण, सिंचाई के लिए पानी की समुचित आपूर्ति, ग्राम-समाज तथा सीलिंग भूमि का भूमिहीनों में आवंटन, वृद्धावस्था पेंशन, निर्बल वर्ग को स्वरोजगार की व्यवस्था, बेघर-बार को आवास सुविधा, पौध संरक्षण, अन्न भंडारण एवं पेयजल की सुविधा, निर्धन व कमजोर वर्गों के लिए उच्च सेवाओं में प्रवेश परीक्षा हेतु प्रशिक्षण की व्यवस्था, ग्राम्य उत्पादन का उचित मूल्य निर्धारण, ग्रामीण युवावर्ग को तकनीकी प्रशिक्षण एवं स्वरोजगार की सुविधा सुलभ कराना, अनावासीय भवनों का निर्माण तथा नयी शिक्षा-नीति के अन्तर्गत मॉडल स्कूलों व रोजगारपरक शिक्षा की व्यवस्था अवस्थापना तत्वों एवं सेवा केन्द्रों का विकास पारिस्थितिकी सन्तुलन एवं पर्यावरण प्रबन्ध तथा सौहार्द्र, सहयोग एवं राष्ट्रीय एकता द्वारा ग्राम्य-अंचलों के बहुमुखी विकास से निरपेक्ष, शोषणमुक्त, समुन्नत सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण करना है।

वस्तुतः ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में एकीकृत शब्द जोड़ देने मात्र से वांछित उद्देश्य की प्राप्ति सम्भव नहीं है। जब तक अधोलिखित तथ्यों एवं ग्रामीण विकास की असफलताओं के मूल कारणों का निराकरण सही परिप्रेक्ष्य में नहीं कर लिया जाता है-

1- प्रत्येक स्तर पर सभी वर्गों में राष्ट्रीय चेतना, चरित्र एवं नैतिकता का निर्माण।
2- ग्रामीण परिवेश में कार्यरत पदाधिकारियों को यथासंभव सभी सुविधाएं सुलभ कराना।
3- ग्रामीण विकास योजनाओं एवं संगठनों में विभिन्न स्तरों पर कार्यरत पदाधिकारियों की सम्पत्ति का मूल्यांकन।
4- अविश्वसनीय एवं वास्तविकता से परे आंकड़ों का ताना-बाना बुनने वाले अधिकारियों को सजा व्यवस्था।
5- नियोजन संगठनों एवं प्रयोगशालाओं की ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापना तथा उनके द्वारा प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का वृहद् सर्वेक्षण, संशोधन एवं सारणीयन के आधार पर बहुस्तरीय, बहुवर्गीय एवं बहुधन्धी, समन्वित विकास परियोजनाओं का कालिक एवं क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुसार निरुपण करना।
6- नियोजन-संकल्पना, प्रक्रिया की बोधगम्यता, भाषाई सरलता एवं ग्राह्यता।
7- निर्धन, कमजोर एवं गरीबी रेखा से नीचे निवास करने वाले ग्रामीणों में विकास परियोजनाओं के प्रति जागरुकता एंव सक्रिय सहभागिता की भावना का सृजन।
8- वर्तमान राष्ट्रीय चेतना के अनुरूप प्रभावी, सबल एवं सुख-सुविधाभोगी लोगों की मानसिकता में परिवर्तन लाना।
9- ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में विनियोजित पूंजी को उत्पादकता का स्वरूप देना, जिससे लागत, उत्पादन, वृद्धि में समन्वय स्थापित हो सके।
10- प्रयोगशाला से खेत तक कार्यक्रम का क्रियान्वयन।
11- रेल, सड़क, सम्पर्क मार्ग, पुल, नहर, नलकूप, तालाब, नाला, नाली, स्कूल, मनोरंजन स्थल, चरागाह, औद्योगीकरण एवं वनीकरण के निर्माण में लघु एवं सीमान्त

शेष पृष्ठ 37 पर

वनाधारित उद्योगों के विकास की संभावनाएं

प्रो. एस.सी. जैन

म.प्र. भारत के मध्य स्थित होने के कारण अपना विशेष महत्व रखता है। उसके कुल क्षेत्रफल का लगभग 33 प्रतिशत भाग वनों से आच्छादित है। यह अन्य राज्यों की तुलना में अधिक है। राज्य में वन जितने विशाल हैं, उतने ही बहुमूल्य हैं अर्थात म.प्र. का भविष्य वनों के भविष्य से जुड़ा है। म.प्र. की अर्थव्यवस्था में वनों का सर्वोपरि स्थान है जबकि अन्य राज्यों की तुलना में म.प्र. औद्योगिकीकरण के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। जिसके महत्वपूर्ण कारण इस प्रकार हैं — औद्योगिक परम्पराओं के अभाव में खेती पर अत्यधिक निर्भरता, यातायात के साधनों की कमी, स्थानीय उद्यमियों का अभाव, संरचना की सुविधाओं का अभाव, प्रति व्यक्ति आय कम, विद्युत दरों में वृद्धि, दूरदर्शी नीतियों का अभाव एवं प्रोत्साहनों में कमी आदि के कारणों से प्रौद्योगिक विकास में कोई उल्लेखनीय प्रगति न हो सकी। किन्तु शनैः शनैः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राज्य औद्योगिक प्रगति की दिशा में अग्रसर होता जा रहा है।

राज्य में अपरिमित नैसर्गिक वन सम्पदा एवं खनिज भंडारों के अतिरिक्त जंगली जड़ी-बूटियां भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। यहां वनाधारित उद्योगों के विकास की प्रबल प्रेरणाएं और सम्भावनाएं हैं। सम्भावित उद्योगों से जहां एक ओर देश की सम्पन्नता में वृद्धि होगी वहीं दूसरी ओर पिछड़े वर्ग की निर्धन जनता को समुचित रोज़गार उपलब्ध होगा। वह वनाधारित उद्योगों की कच्चे माल की देश की 25 प्रतिशत जरूरतें पूरी करने में सक्षम है। इसका केवल एक जिला बस्तर ही कच्चे माल की राष्ट्रीय जरूरतों की 10 प्रतिशत की पूर्ति कर सकता है।

वनों से हमें भू-रक्षण, बाढ़ नियंत्रण, चारा एवं घास, विभिन्न प्रकार के वन्य प्राणी, सौंदर्य पर्यटक स्थल एवं जंगली जड़ी-बूटियां आदि ही नहीं मिलती बल्कि वनों से उद्योगों के लिए प्रचुर मात्रा में कच्चा माल की उपलब्धि होती है। राज्य के वनों से स्थानीय कुटीर उद्योगों के लिए बाँस, टोकरी एवं चटाई बनाने हेतु, तेन्दूपत्ता बीड़ी बनाने हेतु एवं छाल, गोंद, कत्था, रेशम, चीड़, घोंगर, शीशम, सालबीज आदि से अनेकों महत्वपूर्ण उपभोग की वस्तुएं तैयार की जाती हैं। लघु एवं मध्यम श्रेणी के उद्योगों में सागौन, महुआ, चिरोंजी, देवदार, साज, हल्दू एवं खाल सींग आदि कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त की जाती है। बड़े पैमाने के उद्योगों में कागज लुग्दी उद्योग प्रमुख हैं। राज्य में वनाधारित लघु एवं मध्यम स्तरीय के उद्योगों की संख्या लगभग 80 हैं जिनसे लगभग तीन लाख व्यक्तियों को प्रत्यक्ष रोजगार प्राप्त होता है। राज्य में स्थापित उद्योगों की वर्तमान स्थिति निम्नानुसार है—

म.प्र. में वनाधारित उद्योगों की वर्तमान स्थिति (1980 से 1985)

क्रमांक	विवरण	वर्ष 1980 स्थापित	वर्ष 1985 स्थापित	कुल
1.	सागौन एवं अन्य मिश्रित प्रजाति पर आधारित प्लाईवुड विनियर पार्टीकल बोर्ड इत्यादि उद्योग	3	6	9
2.	खैर लकड़ी पर आधारित उद्योग	3	4	7
3.	साज छाल पर आक्जलिक एसिड उद्योग	4	3	7
4.	साल बीज पर आधारित उद्योग	1	4	5
5.	सैमल लकड़ी पर आधारित माचिस उद्योग	-	1	1
		11	18	29

स्रोत - म.प्र. वन विभाग रिपोर्ट 1985, प्रमुख वन संरक्षक मध्य प्रदेश शासन भोपाल।

प्रदेश में वनोपज का कुल उत्पादन निस्तार एवं अन्य स्थानीय उद्योग तथा वर्तमान स्थापित उद्योगों को प्रदाय के पश्चात् कुछ ऐसे क्षेत्र शेष हैं, जिनमें नये-नये उद्योगों को विकसित किया जा सकता है जैसे- मिश्रित हार्डवुड, रेयान ग्रेड पल्प, सीजनिंग ज्वायनरी, स्ट्राबोर्ड, सालबीज-सालवेंट एक्सट्रैक्सन, टेनिन एक्सट्रेक्सन प्लान्ट, प्लाईवुड विनियर हरा, ट्रेडिंग एक्सट्रेक्सन प्लान्ट एवं कत्था व कच्छ उद्योग आदि। इसके अतिरिक्त अन्य, फर्नीचर, गोंद प्रोसेसिंग यूनिट, पैकिंग केसेस, वोबिन बनाना, रेशा तेल एवं आक्सेलिक एसिड आदि उद्योगों को स्थापित किया जा सकता है।

म.प्र. शासन की घोषित नीति के अन्तर्गत ग्राम विकास के लिए कुटीर उद्योग स्थापित किये जायें ताकि ग्रामीणों को पूरे समय रोजगार उपलब्ध हो सके, जिससे उनका आर्थिक जीवन स्तर ऊंचा हो। औद्योगीकरण के निरन्तर बढ़ते हुए कदमों ने वन विकास कार्यक्रमों के उत्तरदायित्व को और भी बढ़ा दिया है। सातवीं पंचवर्षीय योजनान्तर्गत ग्रामीण कुटीर उद्योगों के विकास हेतु राज्य सरकार ने 10 करोड़ रुपये व्यय करने का लक्ष्य निर्धारित किया है। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने बस्तर जिले को अत्यधिक उत्पादन क्षमता वाला भूखण्ड निरूपित किया है, इन्हीं के फलस्वरूप जगदलपुर औद्योगिक वन गहन क्षेत्र की प्रबंध योजना भी तैयार कर ली गई है। जिसके तहत अनुसंधान तथा नये तरीकों द्वारा रोप वनों की सफलता सुनिश्चित की जायेगी। मुख्यतः वनोपज के क्षेत्र में आत्म निर्भरता हो सकेगी।

विपुल वन सम्पदा

औद्योगिक रूप से राज्य के उपयोगी वन मुख्यतः तीन प्रकार के हैं — सागौन वन 31,346 वर्ग कि.मी., साल वन 37,898 वर्ग कि.मी. मिश्रित वन 96,917 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैले हुए हैं। 220 लाख घ.मी. के कुल राष्ट्रीय काष्ठ उत्पादन में हमारा योगदान 50 से 60 लाख घ.मी. काष्ठ का है। बाँस का उत्पादन 3.5 लाख टन है, जबकि अखिल भारतीय आकड़ा 2.7 लाख टन है। तेन्दू पत्ता 35 लाख मानक बोरा, हर्रा 4 लाख क्विंटल, साल बीज 10 लाख क्विटल है। इसके अतिरिक्त राज्य वनों से प्रचुर मात्रा में विभिन्न लघु वनोपज औषधियुक्त जड़ी-बूटी का उत्पादन होता है। राज्य में वनों से वर्तमान में प्राप्त उत्पादन व आय से अधिक पूर्ण संभावित क्षमता निम्न तालिका में प्रदर्शित है:-

राज्य में वर्तमान एवं पूर्व सम्भावित उत्पादन क्षमता

विवरण	वर्तमान	पूर्व संभावित
प्रति हैक्टेयर लकड़ी का उत्पादन	0.3 घन मीटर	5.00 घन मीटर
लकड़ी का कुल उत्पादन	57 लाघ घन मीटर	1,000घन मीटर
उत्पादित रोजगार	8 करोड़ मानव दिवस	40 करोड़ मानव दिवस
कुल वार्षिक आय	200 करोड़ रुपये	1,000 करोड़ रुपये
प्रति हैक्टेयर आय	78 करोड़ रुपये	390 करोड़ रुपये
कुल संनिधि	50 करोड़ घन मीटर	150 करोड़ घन मीटर

स्रोत:- म.प्र. वार्षिकी सूचना प्रकाशन कार्यालय, भोपाल (1985-86, पृष्ठ-8)

उक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि म.प्र. में अनेक महत्वपूर्ण वन सम्पदा प्राप्त होती है।

सम्भावित उद्योगों की स्थिति

राज्य के वनों की केंद्रीय स्थिति इनकी पूर्ण उत्पादन क्षमता को देखते हुये-यहां वनोपज पर आधारित उद्योगों के विकास की विशाल सम्भावनाएं हैं। ऐसे उद्योगों में पूंजी निवेश के आदर्श अवसर उपलब्ध हैं। राज्य के निम्नलिखित जिलों में सम्भावित उद्योगों की वार्षिक उत्पादन क्षमता, उपलब्ध कच्चा माल एवं स्थानीयकरण की दिशा में स्थिति निम्न है—

सम्भावित उद्योगों की वार्षिक उत्पादन क्षमता

क्रमांक	उद्योग	वार्षिक उत्पादन क्षमता	जिला	कच्चा माल
1.	लुग्दी एवं कागज	1,65,000	बस्तर	बाँस, हार्डवुड
2.	अखबारी कागज	66,000	खण्डवा	बाँस, घास, छिलका
3.	रेयान ग्रेड पल्प	66,000	बस्तर	बाँस, हार्डवुड
4.	पार्टिकल बोर्ड	7,500	छिंदवाड़ा	हार्डवुड
5.	हार्डवुड	20,000	बस्तर	हार्डवुड

6. स्ट्रा बोर्ड	30,000	रतलाम	हार्डवुड, बाँस, वगई
7. प्लाई वुड	40,00,000 (वर्ग. मी.)	बस्तर	सागौन
8. साल बीज साल-वट एक्सट्रेक्सन	60,000 (साल बीज)	सरगुजा	साल, महुआ
9. टेनिन एक्सट्रेक्सन	12,000 (हर्रे)	बस्तर रायपुर	हर्रा एवं अन्य टेनिन सामग्री
10. कत्था और कच	2,00,000 (वृक्ष)	सीधी रींवा छतरपुर	खैर वृक्ष

स्रोत:- "ड्राफ्ट फाइव इयर प्लान" 1980-85 वन संरक्षण कार्यालय, भोपाल।

उपरोक्त बड़े तथा मध्यम उद्योगों के अतिरिक्त अन्य लघु उद्योग भी स्थापित किये जा सकते हैं — जैसे फर्नीचर उद्योग, गोंद प्रोसेसिंग यूनिट उद्योग, लकड़ी चिराई पेकिंग केसेस, वोविन, रेशा, तेल एवं नीलगिरी तेल उद्योग आदि। इन उद्योगों में अधिकतम पूंजी की आवश्यकता है। इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए "म.प्र. राज्य वन विकास निगम" प्रयत्नशील है। विशिष्ट वित्तीय संस्थायें, उद्योगों के उत्तरोत्तर विकास में महती भूमिका अदा कर रही हैं।

अतएव इस अमूल्य धरोहर वन सम्पदा में उत्तरोत्तर वृद्धि हेतु वैज्ञानिक आधार पर प्रबन्धकीय एवं नियंत्रित व्यवस्था आवश्यक है। वनोपज वृद्धि के प्रयास व व्यवस्थित तकनीकी विदोहन, अवैध कटाई पर कठोर अंकुश आदि महत्वपूर्ण तथ्य वनों के विकास में एक अहम भूमिका निर्वहन करेंगे। इनमें निहित उपलब्धियों एवं संभावनाओं को यथार्थ रूप देने के लिये निहायत आवश्यक है कि युद्ध स्तर पर वनों के व्यापक विस्तार, प्रसार एवं विकास हेतु प्रयास किये जायें तभी दीर्घगामी सुखद परिणाम हमारे समक्ष प्रस्तुत हो सकेंगे। ☐

वाणिज्य विभाग
डेनियलसन महाविद्यालय,
छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

पृष्ठ 34 का शेष

कृषकों की भूमियों का अनुरक्षण तथा लघु एवं सीमान्त कृषकों को भूमि मुआवजा देकर भूमिहीन करने की अपेक्षा प्रभावी एवं भू-पतियों की भूमियों से अनुपातिक वितरण करना।

12- बन्दोबस्त करते समय सरकारी नियमों, प्रावधानों एवं नियोजन प्रक्रियाओं में निहित तंत्रों का अनुपालन, जिससे "ग्राम-समाज" एवं सीलिंग से प्राप्त भूमि का आबंटन भूमिहीनों में किया जा सके तथा इस कार्य में प्रभावी एवं सबल वर्गों का सहयोग, सहानुभूति, सौहार्द प्राप्त करना जिससे द्वेष एवं संघर्ष का वातावरण सृजित न हो सके।

13- निर्धन एवं कमजोर ग्रामीणों के लिए निःशुल्क लोकप्रिय न्याय-व्यवस्था।

14- महिला समानता एवं सहभागिता की भावना का सृजन।

15- श्रम की प्रतिष्ठा का प्रतिपादन।

16- कृष्येत्तर क्रिया-कलापों की अभिवृद्धि एवं विकेन्द्रीकरण।

17- ग्रामीण अंचलों में प्रौद्योगिकी उपयोग एवं प्रशिक्षण द्वारा क्षमता तथा उत्पादन बढ़ाते हुए रोजगार सुलभ कराना।

18- मानसिक प्रदूषण को संचलनहीन करना जो सामाजिक-आर्थिक,सांस्कृतिक विभेदों का कारण है। ☐

भूगोल विभाग, काशी नरेश, राजकीय महाविद्यालय,
ज्ञानपुर, वाराणसी, उ.प्र.

बिहार के वन और उनकी समस्याएं

अंकुश्री

पर्यावरण के प्रमुख घटकों में पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों का मुख्य स्थान है। इनका प्रमुख प्राप्ति स्थल वन है। वनों के अभाव में नंगे पहाड़ों की ऊंची धरती का क्षरण और बर्फीले चट्टानों का स्खलन हो जाता है। इससे नदियां भर जाती हैं। भरी हुई नदियों की जलधारक शक्ति कम हो जाने से एक तरफ उनमें वर्षा का पानी नहीं अट पाता है तो दूसरी तरफ बरसात के बाद वे तुरंत सूखने लगती हैं। परिणामतः कभी बाढ़ आती है तो कभी सूखा पड़ता है। इसलिये वनों का संरक्षण न केवल पेड़-पौधों और वन्य प्राणियों के सरंक्षण के लिये आवश्यक है, बल्कि पर्यावरण की समग्र सुरक्षा के लिये भी वनों का संरक्षण आवश्यक है।

बिहार मुख्यतः दो भागों में बंटा हुआ है – उत्तर में गंगा का मैदान और दक्षिण में छोटानागपुर का पठार। राज्य में 29,232 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में वन फैला हुआ है, जो राज्य के कुल क्षेत्रफल 1,73,867 वर्ग किलो मीटर का 16 प्रतिशत है। राज्य का मुख्य वन पठारी क्षेत्र में फैला हुआ है। हमारे देश की वन नीति के अनुसार कुल क्षेत्रफल का एक तिहाई हिस्सा वनाच्छादित रहना चाहिये। बिहार में गंगा के उत्तर में 1.77 प्रतिशत और गंगा के दक्षिण में 12.0 प्रतिशत क्षेत्र में वन है। राज्य के मुख्य वन छोटानागपुर और संथाल परगना में फैले हुए हैं। लेकिन इस क्षेत्र में भी 29.4 प्रतिशत भूमि ही वनाच्छादित है, जबकि वन नीति के अनुसार पहाड़ी क्षेत्र की 60 प्रतिशत भूमि पर वन होना चाहिये।

पिछले 25 वर्षों में बिहार राज्य में 2,750 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में वनों का विनाश हो चुका है। बिहार में प्रति व्यक्ति अभी मात्र 0.005 वर्ग किलो मीटर वन पड़ता है जबकि राष्ट्रीय स्तर पर प्रति व्यक्ति 0.013 वर्ग किलोमीटर वनहै। जब हम प्रति व्यक्ति वन के क्षेत्रफल की तुलना दूसरे देशों से करते हैं तो पता चलता है कि हमारे वनों की स्थिति क्या है? कनाडा में प्रति व्यक्ति 2.07 वर्ग किलो मीटर वन पड़ता है।

अर्थव्यवस्था में सहायक

बिहार में पाये जाने वाले 58,10,867 आदिवासियों में से 93 प्रतिशत आदिवासी अकेले छोटानागपुर एवं संथाल परगना में हैं। आजादी के बाद सरकारी सुविधाओं के पहुंचने और अब वनवासी कल्याण केन्द्र जैसी कुछ और संस्थाओं के प्रयास के बावजूद आदिवासियों की अर्थव्यवस्था और उनका जनजीवन वनों से अलग नहीं हो पाया है। वन के बिना उनका जीवन संभव नहीं है। उन्हें आहार, आवास, रोजगार, व्यवस्था सब कुछ वनों से मिलता है। दुर्भाग्यवश आज भी वनों के अंदर रहने वाले आदिवासी इतने गरीब हैं कि उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के कारण वनों का संरक्षण एक महान समस्या बनी हुई है।

दातून, पत्ती, फल, फूल, गोंद, छाल, जड़, जलावन आदि दैनिक एवं निजी उपयोगिता की वस्तुओं के कारण पड़े दबाव को वन बरदाश्त कर लेता है लेकिन जब आवश्यकताएं व्यवसाय बन जाती हैं तो वनों का मुंह बा देना पड़ता है और वन विभाग उसे टुकुर-टुकुर देखते रह जाते हैं। जलावन के नाम पर 3 से 5 वर्ष के बाल वृक्षों को काट कर मथाबोझिया बना लिया जाता है और हाट बाजारों में बेचा जाता है। लकड़ी के चौड़े तख्ते किसी भी वन क्षेत्र से निकट लगने वाले हाट-बाजारों में बेचते हुए देखे जा सकते हैं। ये सारे काम इतने गरीब और मजदूर किस्म के लोग, खासकर महिलाएं ही करती हैं।

बिहार के 15 हजार गांवों में निजी वन भी फैले हुए हैं। इन वनों पर सभी प्रकार के अधिकारों और रियायतों का बोझ है। इन अधिकारों और रियायतों के निर्वाह के साथ वनों का संरक्षण कानूनी, प्रशासनिक, राजनीतिक और आर्थिक कारणों से एक बड़ी समस्या बनी हुई है।

प्राकृतिक वनों पर बढ़ता दबाव

राज्य की जनसंख्या और पशुओं की संख्या भी वन संरक्षण की दिशा में एक समस्या है। राज्य की जनसंख्या 6.99 करोड़ है। यहां के पशुओं की संख्या 2.90 करोड़ है। राष्ट्रीय कृषि आयोग के अनुमान के अनुसार प्रति व्यक्ति 0.6 मीट्रिक टन जलावन की वार्षिक खपत है। इसके अनुसार राज्य में 410 लाख टन जलावन की आवश्यकता है। लेकिन राज्य में बमुश्किल 2.5 लाख टन जलावन का वार्षिक

उत्पादन होता है। लकड़ी के अतिरिक्त गोबर, कृषि उच्छिष्ट, विद्युत,गैस, मिट्टी का तेल, सौर ऊर्जा आदि का भी जलावन के रूप में उपयोग किया जाता है। लेकिन गोबर का मुख्य एवं सही उपयोग खाद के रूप में ही है। विद्युत, गैस और मिट्टी का तेल जैसे जलावन के वैकल्पिक साधनों की उपलब्धता नियमित नहीं है। सौर ऊर्जा का सामान्य उपयोग अभी सर्वसुलभ नहीं है। परिणामतः जलावन के लिये वनों पर दिनानुदिन दबाव बढ़ता जा रहा है। वनों में और उसके आसपास रहने वाले गरीब ग्रामीणों द्वारा अपने जीवन निर्वाह हेतु वनों से लकड़ियां एकत्रित करना एक आवश्यक मजबूरी बनी हुई है। ऊर्जा के विकल्प की कमी और गांव की गरीबी वन संरक्षण को बहुत प्रभावित करती है।

चरागाह का अभाव भी वन संरक्षण में बाधक है। वनों के अंदर आसपास के मवेशियों को चरने की छूट है जिसकी एक सीमा है। मगर व्यावहारिक तौर पर इस सीमा का उल्लंघन किया जाता है। प्रति वर्ष 1,06,00,000 पशु राज्य के वनों में चराई करते हैं।

वन भूमि का गैर-वानिकी कार्यों हेतु हस्तांतरण

खनिज, सिंचाई, कृषि आदि गैर-वानिकी कार्यों के लिये वन भूमि का हस्तांतरण होते रहता है। खनन और सिंचाई के लिए वन भूमि का हस्तांतरण सरकारी तौर पर किया जाता है। लेकिन कभी-कभी बिना सरकारी आदेश प्राप्त किये भी अवैध ढंग से इस कार्य के लिये वन भूमि पर अधिकार कर लिया जाता है।

अवैध पातन एवं अवैध जोतकोड़

अभी देश की 78 प्रतिशत जनता अपनी आजीविका के लिए कृषि पर आश्रित है। इसका असर वनों पर भी पड़ता है। वनों में और उसके आसपास रहने वाले ग्रामीणों द्वारा वन भूमि का कृषि कार्य हेतु अतिक्रमण एक आम समस्या है। छुटपुट रूप से यह समस्या पूरे राज्य के वनों में है। लेकिन दुमका और सिंहभूम जिले में इस समस्या का विकराल रूप दिखाई देता है।

दुमका के वनों में कुरावं एक मुख्य समस्या है। झूम खेती (सीफ्टिंग कल्टीमेशन) को यहां स्थानीय तौर पर 'कुरावं' कहा जाता है। यहां की मुख्यतः पहाड़िया जाति वन भूमि को जोतकोड़ कर उसमें बरबट्टी की खेती करती है। 'संथाल परगना पी.एफ. रूल' के अनुसार बांसलोई नदी के दक्षिण में कुरावं वर्जित है। मगर पेट जले पहाड़ियां लोगों को गरीबी और भूख के आगे कोई सीमा दिखलाई नहीं देती हैं। करीब 20 वर्ष पूर्व बांसलोई नदी के दक्षिण क्षेत्र में भी कुरावं प्रारंभ हो गया। वस्तुतः यह जाति वर्षों से महाजनों की चपेट

वन क्षेत्रों में हाट बाजार

में रहने के कारण आर्थिक दृष्टि से खोखली हो चुकी है। आजीवन कर्ज के बोझ से दबे रहने के कारण उन्हें विकास का कोई रास्ता दिखलाई नहीं देता है। हालांकि इधर आदिवासी विकास निगम द्वारा पहाड़िया जाति के विकास की अनेक परियोजनाएं चलाई जा रही है, जिनका लाभ उठा कर यह जाति अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार ला रही है।

वन पदार्थों की बढ़ती कीमतें

वन पदार्थों की दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही कीमतें भी संरक्षण के रास्ते में एक समस्या बनी हुई है। इन कीमती वन पदार्थों की चोरी में इधर काफी नये तकनीकों का प्रयोग किया जाने लगा है। जैसे तेज वाहनों का प्रयोग, नये—नये हथियारों का प्रयोग आदि। पलामू और हजारीबाग में चारकोल के अवैध व्यापार पर भी वन प्रशासन के अथक प्रयास से बहुत कुछ नियंत्रण लाया जा चुका है। चारकोल का मुख्य व्यावसायिक केन्द्र बनारस है। चारकोल के अवैध व्यापार की समस्या से निपटने के लिए हालांकि इसके पारगमन पर रोक लगा दी गई है, फिर भी अवैध व्यापारियों पर कड़ी निगाह रखना बहुत आवश्यक है, जो एक समस्या है।

अवैध शिकार

बिहार में 4,862.58 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैली 16 आश्रय स्थल हैं, जिनमें तरह-तरह के वन्य प्राणी रहते हैं। लेकिन उन वन्य प्राणियों पर भी कुछ लोग अपनी गिद्ध-आंखें लगाये रहते हैं और उनके शिकार के लिए मौका तलाशते रहते हैं।

राजस्व हेतु वनों का विदोहन

केंदू पत्ती, गोंद, छाल, तेलीय बीज आदि लघु वन पदार्थों के संग्रहण से बिहार सरकार को प्रति वर्ष अच्छा राजस्व प्राप्त हो जाता है। लेकिन वनों के संरक्षण में एक बड़ी और प्रशासनिक बाधा है — राजस्व के लिये वनों का विदोहन। वनों से टिंबर का विदोहन विगत चार वर्षों से वन विभाग के राजकीय व्यापार संगठन द्वारा किया जा रहा है। इससे ठेकेदारों को टिंबर के विदोहन के लिये वनों के अंदर जाने की पुरानी परंपरा तो समाप्त हो गई है मगर राजकीय व्यापार संगठन ने वनों को राजस्व का प्रमुख स्रोत मान लिया है। दरअसल राजकीय व्यापार का मूल कार्य ही राजस्व के निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने के लिये वनों का विदोहन करना है।

कुछ लघु वन पदार्थों, विशेष कर छाल और गोंद के विदोहन के लिये पेड़ों की निर्मम हत्या तक कर दी जाती है। छालों में सोना छाल और बगलर छाल का विशेष महत्व है। गोंद के लिये चिरौंजी, केंवजी, गलगल, पियार, गीजन आदि वृक्षों का उपयोग किया जाता है। सही कार्य नियोजना का अभाव एवं इन वन पदार्थों के संग्रह के अधिकार के खरीददारों की स्वार्थपरता के कारण ही वृक्षों को इस तरह का नुकसान सहना पड़ता है। इन वन पदार्थों से प्राप्त राजस्व की तुलना में वनों में सह-अस्तित्व के लिये इन वृक्षों की उपस्थिति की अनिवार्यता से की जानी चाहिये। वनों के विकास और पर्यावरण की सुरक्षा को अपने नये बीस-सूत्री कार्यक्रमों में इसको विशेष महत्व दिया गया है।

वन संरक्षण की समस्या से निपटने के लिये अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। जलावन एवं चारा की आवश्यकता को पूरा करने में सामाजिक वानिकी एवं प्रसार वानिकी कार्यक्रमों का विशेष महत्व है। इन कार्यक्रमों का विस्तार किये जाने से ग्रामीणों के साथ ही शहर के गरीब तबके के लोग भी लाभान्वित हो रहे हैं। इन कार्यक्रमों ने पर्यावरण की सुरक्षा में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है।

राज्य की करीब 44 हजार वर्ग किलो मीटर बेकार पड़ी भूमि का उपयोग, धुंआरहित तथा गोबर गैस संयंत्रों को अधिकाधिक लोगों तक पहुंचाना, राज्य से बाहर जलावन के निर्यात पर पूर्ण रोक लगाना, प्राकृतिक वनों के पुनर्जीवन को महत्व देना, वन सीमा को सुदृढ़ करना, वनों की गश्ती करने वाले उड़न दस्तों को सशस्त्र करना, ठेकेदारों पर जंगल में जाने से पूर्णतया रोक लगाना, वनों के अंदर खनिज विदोहन के बाद गड्ढे को भर कर उस पर वृक्ष लगाना, उपभोक्ता डिपों में वन पदार्थों की सर्व सुलभ उपलब्धता को सुनिश्चित करना आदि ऐसे कार्यक्रम हैं, जिन्हें पूरा करके वनों के संरक्षण को और सुदृढ़ किया जा सकता है। □

वन भवन
रांची (बिहार)
834 002

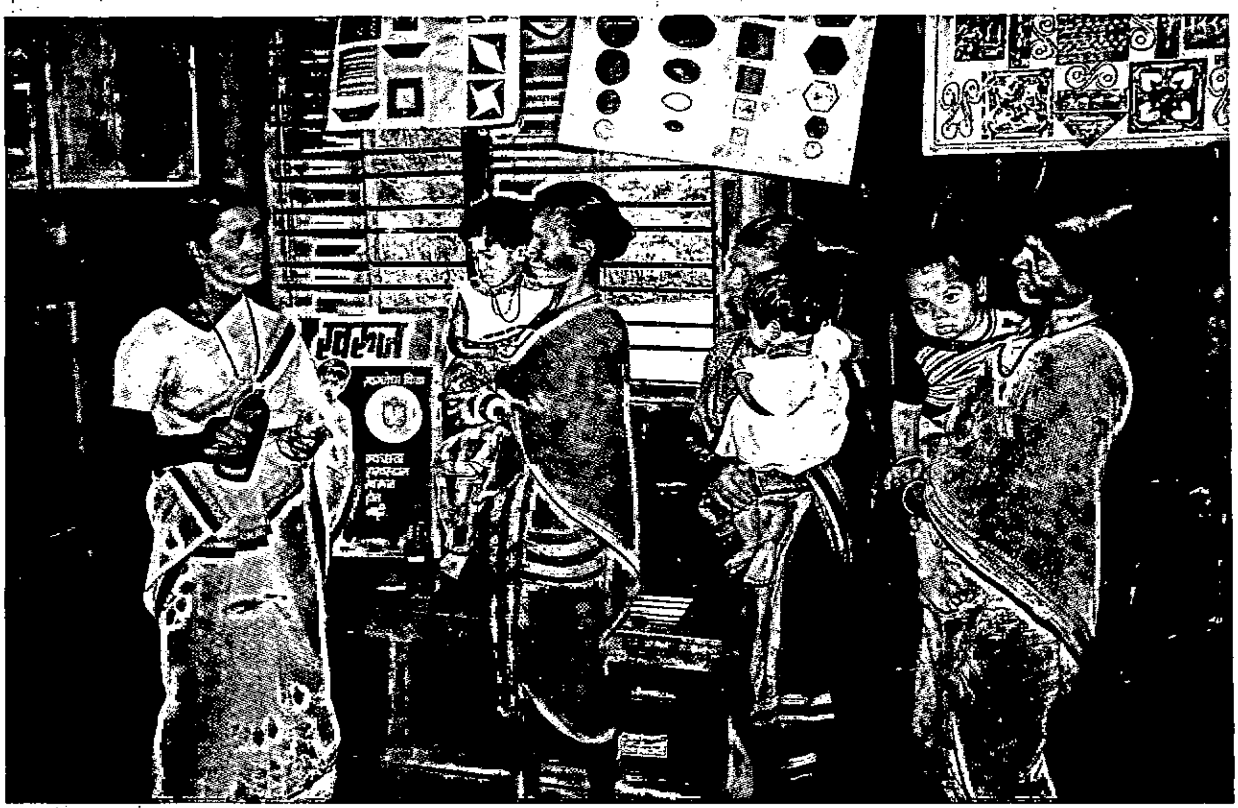

अगर हमारी आधी आबादी आर्थिक रूप से दूसरों पर निर्भर सामाजिक रूप से शोषित और अशिक्षित रहेगी तो विकास और उन्नति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसी तरह यदि 'सबके लिए' स्वास्थ्य का लक्ष्य हमें प्राप्त करना है तो महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य को और विशेष ध्यान देना होगा।

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ.. नई दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

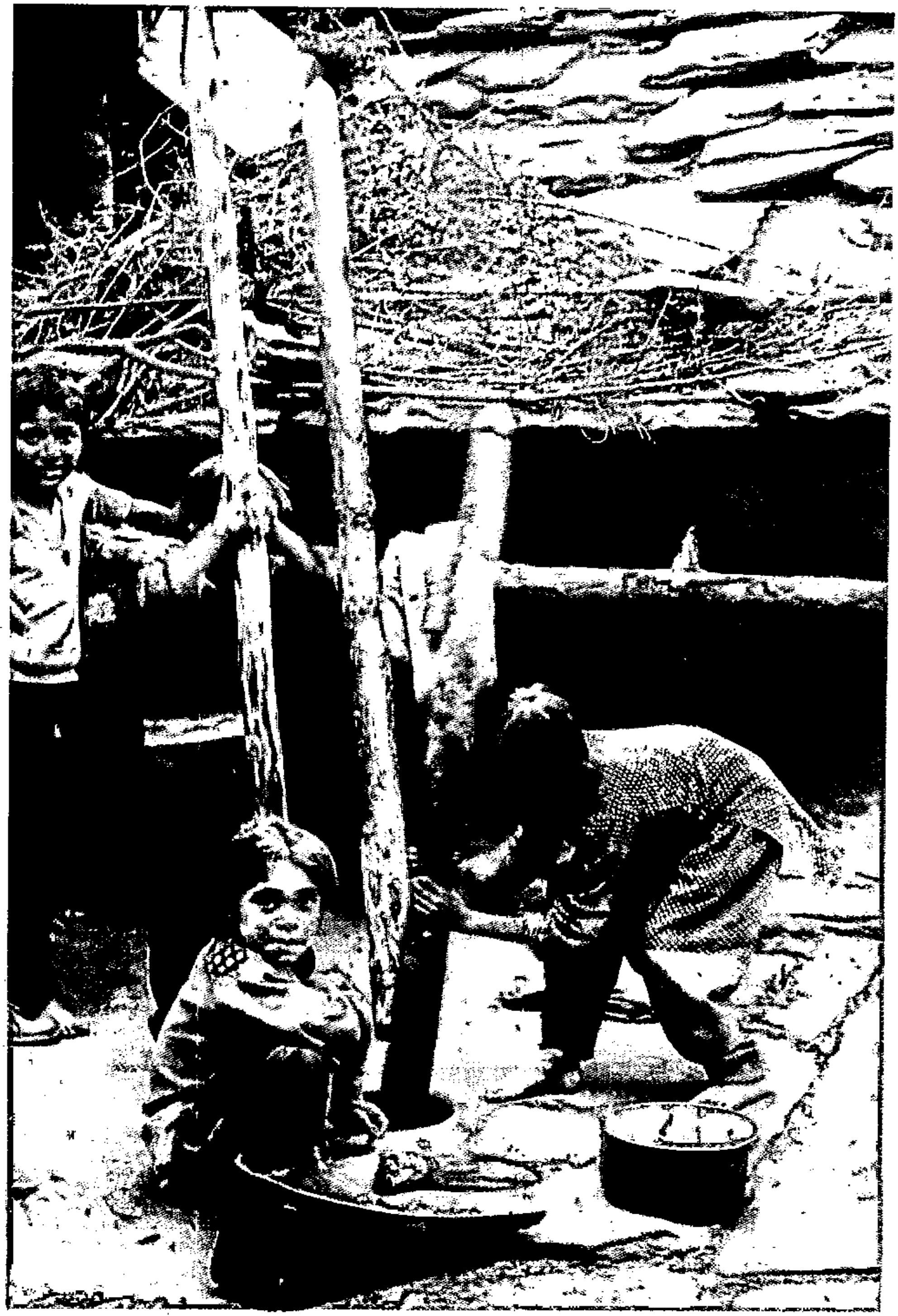

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित